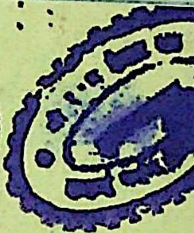






सर्व वेदान्त समन्वित अद्वैतामृतवर्षी अद्भुद् अनुभव सम्पन्न

महाग्रन्थ

ज्ञान-योग



लेखकः—

[तत्वदर्शिनी, प्रेमदर्शिनी एवं कर्मयोग के सुप्रसिद्ध प्रणेता]

ब्रह्मविद्वरिष्ठ सर्वात्मदर्शी परमहंस

श्री. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज



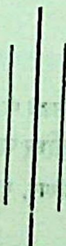




मर्म वेदान्त समन्वित अद्वैतामृतवर्षी अद्भुद् अनुभव सम्पन्न

महाग्रन्थ

ज्ञान-योग



लेखकः—

[तत्वदर्शिनी, प्रेमदर्शिनी एवं कर्मयोग के सुप्रसिद्ध प्रणेता]

ब्रह्मविद्वरिष्ठ सर्वात्मदर्शी परमहंस

श्री स्वामी स्वतःआनन्द जी महाराज

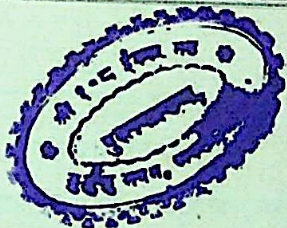
प्रकाशक:—
गिरिधर पाण्डेय
ग्राम, पोस्ट-पहसा, जिला-बलिया
[उ० प्र०]

प्रथम संस्करण १९७३ ई० ········ १०००

पुस्तक मिलने का पता:—
गिरिधर पाण्डेय
(१) जनता साइकिल इम्पोरियम, १२, कुर्मी टोला, मेन रोड, आजमगढ़ (उ० प्र०)
(२) ग्राम, पो०—पहसा, जिला-बलिया (उ० प्र०)

मूल्य:—२ रुपया

मुद्रक—सैको प्रेस, १५० कुर्मीटोला, आजमगढ़ ।



ब्रह्मात्मैक्य बोधक वेद महावाक्यः

१— "अहं ब्रह्मास्मि" (यजुर्वेद)

२— "तत्त्वमसि" (सामवेद)

३— "अयमात्मा ब्रह्म" (अथर्ववेद)



। ॐ स्वतन्त्रानन्दात्मने नमः ।

'स्वतन्त्रानन्दस्य शिष्यमात्मानन्दं प्रति स्वतन्त्र दिव्यामर सन्देशः'

(प्रस्तुत पत्र श्री स्वामी जी महाराज ने अपने एकमात्र शिष्य श्री आत्मानन्द जी को उस समय लिखा था, जब वे मेरठ में लीवर के भयंकर रोग के कारण मरणासन्नावस्था में थे)

आत्मस्वरूप आत्मानन्द !

तुझ निरामय निर्विकार आत्मा में ये आमय एवं विकार अनात्मधर्म कहां? तुझ सत् में असत् कहाँ ? चित् में जड़ कहाँ ? आनन्द मे दुःख कहाँ ? तुझ द्रष्टा में दृश्यधर्म कहाँ तुझ ? असंग में 'लीवर' का संग कैसे ? तुझ अधिष्ठान में अध्यस्त क्लेश कैसा ? क्योंकि अधिष्ठान में अध्यस्त की सत्ता ही नहीं है । तो क्या प्रतीति मात्र लीवर के सुख दुःखादि धर्म तुझे अपने निर्दुःखत्व, निर्विकारत्व से विचलित कर सकते हैं ? । तुझ सदाशिव नित्य निर्विकार मूर्ति में त्रिकाल में भी कभी कोई विकार हुआ ही नहीं । सागर में तरङ्गों के सृष्ट एवं लीन होने से सागर का क्या बिगड़ता है । ऐसे ही तुझ सर्वाधिष्ठानस्वरूप आत्मा में सुखदुःखात्मक अनन्त २ वीचियाँ उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय को प्राप्त होती रहती हैं । फिर उन विनाशशील असत् धर्मों से तुझ अविनाशी अक्षुब्ध आत्मा का क्या बिगड़ता है ।

आत्मानन्द !

तुम आत्मा हो । स्वतन्त्र हो । एक हो । अद्वय हो । तुझे व्यथित करने वाली अन्य कोई वस्तु ही नहीं है । सर्वत्र आत्मा ही आत्मा, तूं ही तूं है । तुझसे भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं है । तूं ही नीचे-ऊपर दांये-बांये सर्वत्र

सर्वरूप से सर्वदा फैला हुआ है। तुझ भूमानन्द स्वरूपानन्द निरिन्द्रिय निर्गुण निर्विशेष आत्मा में अन्य कोई देश काल वस्तु है ही नहीं। तूं आत्मानन्द हो सर्वत्र आनन्द की तरङ्गें मौजें मार रहा है। आनन्द में आनन्द की क्रीडा कर रहा है, विनोद कर रहा है। फिर ऐसी अवस्था में तुझ सुखसागर स्वरूप में ये रोग एवं दुःख कहां? क्योंकि तुझ रसात्मक अमृतात्मा अमृतमूर्ति से ही ओषधियों को भी ओषधित्व की शक्ति मिलती है। फिर तुझ ओषधित्व के भी ओषधि निरोषधिस्वरूप को ओषधियों से क्या प्रयोजन! तुझ सर्वात्मा सर्वात्मदर्शी सर्वस्वरूप महात्मा में, शोक मोह कहां? तुम सर्वदा अपनी महिमा भूमानन्द आत्मानन्द में ही आराम करने वाले आत्मारामी मुनि हो। फिर सूर्यवत् अन्धकार देखने की विपरीत कल्पना ही क्या?

तुम स्वतन्त्र हो, स्वतन्त्र तुम्हारे पास है। तुम निर्भय हो, निर्भय से आवृत हो, तुम निर्द्वन्द्व हो, निर्द्वन्द्व तुझमें व्याप्त है। तुम निरामय हो, निरुपद्रव हो। शरीर भय रहित होने के कारण सच्चिदानन्द मूर्ति हो।

निःशोक हो, निःशोक हो, निःशोक हो।
निरामय हो, निरामय हो, निरामय हो।
स्वस्थ हो, स्वस्थ हो, स्वस्थ हो।
शान्त हो, शान्त हो, शान्त हो।
सुखी हो, सुखी हो, सुखी हो।

यह स्वतन्त्र का स्वतन्त्र दिव्य उपचार-महौषधि है, अपने प्रियतम आत्मस्वरूप आत्मा आत्मानन्द के लिए"""।

अतः प्यारे आत्मा! तुम उठ बैठो। इस दिव्यामृत को घूंटों को पीकर स्वस्थ हो जाओ, स्वरूपस्थ होकर"""।

प्यारे ! यही दिव्योपधि कृष्ण ने महाशोकमग्न अर्जुन एवं उद्धव को, शुक ने परीक्षित् को सनकादि ने नारद को, महाविष्णु ने ब्रह्मा विष्णु एवं महेश को, राम ने लक्ष्मण एवं हनुमान को शङ्कर ने पार्वती को दी थी। वही अजरत्व एवं अमरत्व प्रदान करने वाली औषधि तुझे भी दी गई है। अतः इसके सेवन से अभी-अभी अविलम्ब स्वस्थ, सुखी, निरामय एवं त्रितापरहित हो जाओ !

। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

"ॐ स्वानुभूत्यात्मने नमः

"स्वतन्त्रस्य स्वतन्त्रानुभूतिः"

ब्रह्मात्मक ब्रह्माकुल था, ब्रह्माकारवृत्ति सर्वत्र ब्रह्म से क्रीड़ा कर रही थी। ब्रह्मभूतावृद्धवायु ब्रह्मस्वरूप वृद्ध वृक्षों का आलिंगन कर रही थी इतने ही में उस ब्रह्माकार वृत्ति ने

"मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्"

की ओर संकेत किया कि मुझ सागरस्वरूप ब्रह्म से ही ये प्रकृति महत्तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादिक नाना भूत जात जड़ चेतनात्मक जगत तरंग रूपेण मद्रूप से सृष्ट होकर आपस में ब्राह्मी आलिंगन कर रहे हैं। सब

"आनन्दो ब्रह्म"

ब्रह्मानन्दमूर्ति हो आनन्द से आनन्द की क्रीड़ा कर रहे हैं, गले से गला मिला रहे हैं, प्रेमालाप कर रहे हैं, विनोद कर रहे हैं, रति कर रहे हैं, प्रीति कर रहे हैं, तन्मय तद्रूप हो रहे हैं, सब सर्वात्मा सर्वरूप हो अवाङ्मनसगोचर अक्षयानन्द का आस्वादन कर रहे हैं। आत्मस्वरूप अपने स्वस्त-भूत वृक्षों का आलिंगन कर रहे हैं ये वृक्ष भी अपने स्वरूपभूत वायु से एकीभूत

होकर अपनी मस्ती में झूम रहे है, ब्रह्मानन्द में मग्न हो रहे हैं। ब्रह्मस्वरूप व्यापक आकाश इस ब्राह्मी क्रीड़ा के चंदोवे-तम्बू का कार्य कर रहा है, अज्ञानान्धकारनाशक सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्य प्रकाश दे रहा रहा है, निर्विकार-भूता वायु व्यजन का कार्य कर रही है एवं ब्रह्मभूता वसुन्धरा क्रीडास्थली बनी हुयी है, 'रसोवै सः' रसस्वरूप जल सबको अपने रसार्णव में निमग्न कर रहा है, तृप्त कर रहा है, सराबोर कर रहा है। सबसे सर्वत्र रसामृत की वृष्टि हो रही है और भी चिन्मय-रूपधारी चतुर्विध जीव स्वरूपभूत आत्मानन्द-स्वतन्त्रानन्द के लिए स्वतन्त्र क्रीड़ा कर रहे हैं, एक दूसरे से आत्म-मिथुन कर रहे हैं। बाह्य दृष्टि से अनेक होने पर भी स्वरूप दृष्टि से एक-अभिन्न हो रहे हैं और इस 'रसो वै मधुः' श्रुति मन्त्रानुसार रसरूप-मधुरूप मधुपति के माधुर्य का मधुपान कर रहे हैं, आनन्द-मग्न हो रहे हैं। ब्रह्माकारवृत्ति भी इस

"स्वानुभूति रसावेशाद्दृश्यशब्दावुपेक्षितुः"

प्रौढ़ रसानुभूति के कारण दृश्य शब्द की उपेक्षा करती हुई अपने स्वरूपभूत ब्रह्मसागर में निमग्न हो गई, शान्त हो गई, मूक हो गई, अपना व्यापार छोड़ बैठी क्योंकि क्रीडा-ब्रह्माकारता के काल में सबको ब्रह्मरूपेण दिखाने एवं सबको ब्रह्मरूपेण प्रतिष्ठित करने के कारण श्रमित हो गई थी। अतः श्रम से मुक्त होने के लिए अपने कारणभूत ब्रह्म सत्य में यह दिव्य, अमर-संदेश देती हुई लीन हो गई कि वस्तुतः मेरा भी कार्य अन्वय-व्यतिरेक दृष्टि से अज्ञानात्मक कार्य-जगत को समाप्त करके निर्विकल्प ब्रह्म में लीन कर जाने का ही है।

हाँ तो "मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्" के काल में सब आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, दिक्पालदिक्पालादि एक दूसरे से मिले हुए थे, एक ही अनेकत्व-परिच्छिन्न अहं के आपे को छोड़ बैठे थे—

"यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥"

की दृष्टि से एकत्व का नारा लगा रहे थे, शोक-मोह से मुक्त द्वैत बुद्धि से रहित हो रहे थे, सूर्य की रश्मियाँ इस महोत्सव में नृत्य कर रहीं थीं, आकाश, पृथ्वी, वायु, अग्नि, जलादि सब स्वात्मरूपेण स्वागत कर रहे थे। सब उस समय "प्राणोह्येष ·····प्राण-आत्मा हो रहे थे, आनन्द में मग्न थे। केवल अनिर्वचनीय, अजन्य, शाश्वत, भूमा सुख था, केवल केवल-कार गूँज थी, वाणी मूक थी, सब एक दूसरे से आत्मालाप-प्रेमालाप कर रहे थे और प्रेम से प्रेम की प्रेमास्पदी वार्ता कर रहे थे। सब प्रेम-मूर्ति आनन्द-मूर्ति थे, अतएव सब शान्त, अपनी तूष्णी अवस्था में स्थित थे इसलिए कि "यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्" वहां सब आत्मा ही हो गये थे। ऐसी अवस्था में जगत्विलापिनी ब्रह्माकार वृत्ति भी महात्मा के आदेशानुसार सबको ब्रह्मरूप दिखलाने का अपना कार्य समाप्त करके अपने कारणस्वरूप उस सागर-स्वरूप व्यापक महात्मा को नमस्कार करती हुई लीन कर गई। शान्त हो गई। अतः कार्य शेष हुआ, साधना शेष हुई, शास्त्र शेष हुआ, आत्मा शेष हुआ, स्वतन्त्र शेष हुआ, सब शेष हुआ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

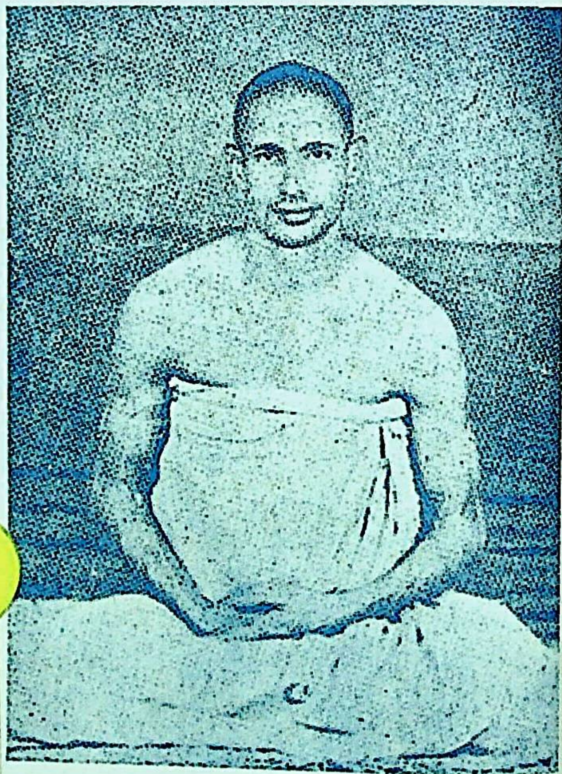
ॐ शांतिः। शांतिः॥ शांतिः॥।

प्रमाणगत सांकेतिक ग्रन्थों का स्पष्टीकरण

संख्या	संकेत	स्पष्ट
१–	ऋ० सं०	ऋग्वेद संहिता
२–	य० सं०	यजुर्वेद संहिता
३–	सा० सं०	सामवेद संहिता
४–	अ० सं०	अथर्ववेद संहिता
५–	ई० उ०	ईशावास्योपनिषद्
६–	के० उ०	केनोपनिषद्
७–	क० उ०	कठोपनिषद्
८–	मु० उ०	मुण्डकोपनिषद्
९–	तै० उ०	तैत्तिरीयोपनिषद्
१०–	ऐ० उ०	ऐतरेयोपनिषद्
११–	छा० उ०	छान्दग्योपनिषद्
१२–	बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्
१३–	श्वे० उ०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
१४–	कै० उ०	कैवल्योपनिषद्
१५–	अ० ना० उ०	अमृतनादोपनिषद्
१६–	नृ० उ० उ०	नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्
१७–	सं० उ०	संन्यासोपनिषद्
१८–	मैत्रे०उ०	मैत्रेय्युपनिषद्
१९–	नि० उ०	निरालम्बोपनिषद्
२०–	शु० र० उ०	शुकरहस्योपनिषद्
२१–	ते० बि० उ०	तेजोबिन्दूपनिषद्

संख्या	संकेत	स्पष्ट
२२-	ना० वि० उ०	नादबिन्दूपनिषद्
२३-	यो० त० उ०	योगतत्त्वोपनिषद्
२४-	आ० प्र० उ०	आत्मप्रबोधोपनिषद्
२५-	ना० प० उ०	नारदपरिव्राजकोपनिषद्
२६-	त्रि० ब्रा० उ०	त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्
२७-	म० ब्रा० उ०	मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
२८-	त्रि० म० उ०	त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्
२९-	श्रीरा० पू० उ०	श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्
३०-	शा० उ०	शाण्डिल्योपनिषद्
३१-	पै० उ०	पैङ्गलोपनिषद्
३२-	म० उ०	महोपनिषद्
३३-	यो० शि० उ०	योगशिखोपनिषद्
३४-	अक्षि० उ०	अक्ष्युपनिषद्
३५-	अन्न० उ०	अन्नपूर्णोपनिषद्
३६-	अ० उ०	अध्यात्मोपनिषद्
३७-	कु० उ०	कुण्डिकोपनिषद्
३८-	आ० उ०	आत्मोपनिषद्
३९-	पा० ब्र० उ०	पाशुपतब्रह्मोपनिषद्
४०-	अव० उ०	अवधूतोपनिषद्
४१-	क० रु० उ०	कठरुद्रोपनिषद्
४२-	रु० हृ० उ०	रुद्रहृदयोपनिषद्
४३-	[illegible] उ०	[illegible]

संख्या	संकेत	स्पष्ट
४४–	या० उ०	याज्ञवल्क्योपनिषद्
४५–	व० उ०	वराहोपनिषद्
४६–	स० र० उ०	सरस्वतीरहस्योपनिषद्
४७–	सौ० ल० उ०	सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्
४८–	स्क० उ०	स्कन्दोपनिषद्
४९–	मुक्ति० उ०	मुक्तिकोपनिषद्
५०–	मा० का०	माण्डूक्यकारिका
५१–	तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
५२–	सां० द०	सांख्य दर्शन
५३–	यो० द०	योग दर्शन
५४–	ब्र० सू०	ब्रह्मसूत्र
५५–	यो० वा०	योगवासिष्ठ
५६–	सू० सं०	सूतसंहिता
५७–	श्रीमद्भ०	श्रीमद्भगवद्गीता
५८–	अष्टा० गी०	अष्टावक्रगीता
५९–	मनु०	मनुस्मृति
६०–	श्रीमद्भा०	श्रीमद्भागवतमहापुराण
६१–	वि० पु०	विष्णु पुराण
६२–	ब्र० पु०	ब्रह्म पुराण
६३–	वि० प०	विष्णु धर्मोत्तर
६४–	शि० ध०	शिवधर्मोत्तर
६५–	[illegible]	[illegible]



तत्त्वदर्शिनी प्रेमदर्शिनी एवं कर्मयोग के सुप्रसिद्ध
टीकाकार अनन्त श्रीविभूषित सर्वात्मदर्शी परमहंस
[illegible] जी महाराज

ॐ

"ज्ञान योग"

॥ॐ ज्ञप्यात्मने नमः॥

आचार्यं ज्ञान योगस्य ज्ञानगम्यं च सद्गुरुम् ।
ज्ञानमूर्ति च श्रीकृष्णं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥१॥
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
सच्चिदानन्द रूपं तं स्वात्मानंप्रणमाम्यहम् ॥२॥
सम्यग्ज्ञानं प्रवक्ष्यामि श्रीकृष्णस्य प्रसादतः ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥३॥
ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यथा श्रुतिशासनम् ।
अज्ञानादेव बन्धः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ॥४॥
ज्ञानव्याप्तमिद सर्वं यत्किंचित् जगतीतले ।
तस्माज्ज्ञानस्य प्राप्त्यर्थी न चाज्ञानपरो भवेत् ॥५॥

इस जगती तल—ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जड़-चैतन्यात्मक वस्तु है, वह सब ज्ञानस्वरूप ब्रह्म से व्याप्त—परिपूर्ण है । अतः उस कैवल्यस्वरूप ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अज्ञान

"भेद दृष्टि रविद्येयम्" (म० उ० ५।११३)

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" (नि० उ०)

भेद दृष्टि रूप अविद्या को अर्थात् सत् ब्रह्म से भिन्न

"वाचारम्भणंविकारो नामधेयम्" (छा० उ० ६।१।४)

वाचारम्भणमात्र, असत्, दुःखप्रद जीव-जगत बुद्धि के परायण मत होओ यानी इसे सत्यरूपेण मत स्वीकार करो ।

"सर्वनामरूपात्मक प्रपंचाध्यासाधिष्ठानत्वं ब्रह्मत्वम्"

सदैव सर्वप्रपंचाध्यासाधिष्ठान स्वरूप,

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म" (अ० उ० १।४३)

सत्, एक, अद्वय, ब्रह्मबुद्धि से ही युक्त रहो, कभी भी

"सत्यानृतवस्तवभेद प्रतीतिरध्यास:"

की दृष्टि से, असत् अध्यस्त—विवर्तजागतिक मोहोत्पादक

"द्वितीयाद्वै भयं भवति" (वृ० उ० १।४।२)

भयप्रद द्वैतदर्शन को मत स्वीकार करो; क्योंकि ज्ञानस्वरूप प्रकाशक ब्रह्म में अज्ञानात्मक सृष्टि ही संभव नहीं है। अतः

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" (क०उ०२।१।१०)

मृत्युप्रद अज्ञानात्मक भेद दृष्टि रूप अनात्म देह दर्शन के त्याग के द्वारा सदैव कैवल्यस्वरूप शाश्वतानन्द—अक्षयानन्द—निरतिशयानन्द—भूमानन्द ज्ञान-स्वरूप ब्रह्मबुद्धि से ही सम्पन्न रहना चाहिए, नित्य-निरन्तर उसी का आस्वादन आलिंगन—अनुभव करते हुए स्वरूपानन्द में ही मग्न रहना चाहिए अर्थात्

" सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव "

" अहमेवेदं सर्वम् " (छा०उ०७।२५।१)

" आत्मैवेदं सर्वम् " (छा०उ०७।२५।२)

इन पदों के अनुसार, अपने सहित समस्त ब्रह्माण्ड को ब्रह्मस्वरूप ही देखना चाहिए यानी सबको निःशोक अजुगुप्सित अपना परम प्रेमास्पदस्वरूप आत्मा ही समझना चाहिए। यही वेद भगवान् का भी आदेश है कि:—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ (ई०उ०१)

इस कार्य–अध्यस्त– विवर्त विश्वप्रपंच में जो कुछ जड़–चेतनात्मक वस्तु है, वह सब अधिष्ठानस्वरूप कारण ईश्वर से व्याप्त–आच्छादित है अर्थात्

" येन यद्व्याप्तं तत्तन्मात्रमेव "

इस सिद्धान्तानुसार, सब तद्रूप– ब्रह्मस्वरूप ही है जड़–चेतन नाम की कोई वस्तु नहीं है । उस

" एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ०उ०६३)
"यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म" (बृ०उ०३।४ १)

एक, अद्वय, अधिष्ठान भूत ब्रह्म में नाना स्व–अध्यस्त वस्तु नहीं है । वह ब्रह्म साक्षात् प्रत्यक्ष है, उसे आवृत करने वाली अन्य कोई वस्तु ही नहीं है । अतः उस निरावरण सच्चिदानन्द अमृत ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए,

" त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः " (कै० उ० ३)
"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥(स०१०ड०२३-२४)
"उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः" (श्रुति)

नामरूपात्मक अध्यस्त कार्य जगत् के त्याग––उपेक्षा के द्वारा अर्थात्

"दृष्टानुश्रविक विषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्"
(यो० द० १।१५)

दृष्टानुश्रविक ब्रह्मलोकपर्यन्त विकृत, विनाशी, दुःख प्रद, विपाक्त संस्पर्शज भोगों से विरक्त हो, ईश्वर से स्वतः-प्रदत्त प्रारब्ध भोगों को भोगते हुए अर्थात्

" निर्योगक्षेम आत्मवान् " (श्रीमद्भ० २।४५)

इस गीतोक्त भगवद्वचनानुसार, शरीर के योगक्षेम की चिन्ता से रहित आत्मवान हो यानी "मैं सुखस्वरूप व्यापक आत्मा हूँ दुःख स्वरूप एकदेशीय परिच्छिन्न शरीर अनात्मा नहीं–इस बुद्धि से शरीर से निःस्पृह,

"अद्वैत भावना भैक्षममक्ष्यं द्वैतभावनम् (मैत्रे० उ० २।१०)

अद्वैत भावना का भिक्षुक हो,

"सजातीय प्रवाहश्च विजातीय तिरस्कृतिः" (ते०वि०उ० १।१८)

अनात्म जगदाकार विजातीय द्वैतवृत्ति का निःशेष निरसन करते हुए, सजातीय परमानन्द प्रदायिनी ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुभूता विषयविलापिनी अखण्ड ब्रह्माकाराकारित वृत्ति से सम्पन्न हो,

" असङ्गो ह्ययं पुरुषः " (बृ०उ० ४।३।१५)

" असङ्गो न हि सज्जते " (बृ०उ० ४।४।२२)

अपने असंसर्गी निर्गुण निर्विशेष अद्वय भूमा सुखस्वरूप प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित स्व अजरत्व अमरत्व में स्थित सर्वात्मदर्शी हो, सर्वत्र अक्षयानन्द, भूमानन्द निरतिशयानन्द का अनुभव करते हुए अर्थात् सर्वत्र उस सर्वातिशायी सर्वात्म मय परमाद्भुत सत्ता को देखते हुए परिच्छिन्न अहं–जीवभाव से मुक्त अपरिच्छिन्न सर्वदेश, काल, वस्तु में अनुस्यूत सर्वात्मा सर्वरूप अपने भूमारूप महामहिमा महिमान्वित,

" वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् "　　(छा० उ० ६।१।४)

वाचारम्भणमात्र स्व–पर किसी के भी धन—स्वत्व को स्वीकार न करते हुए अर्थात्

" भेद दृष्टिरविद्येयम् "　　(म्र० उ० ५।११३)

" द्वितीयाद्वै भयं भवति "　　(बृ० उ० १।४।२)

" अयमात्मा ब्रह्म "　　(अ० सं०)

" सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः" (क०स०उ०४१)

मृत्युप्रद स्व-पर के अविद्यात्मक भेदबुद्धि से मुक्त एकत्व सर्वात्मदर्शी हो सर्वोपाधि–विनिर्मुक्त स्वरूपभूत नित्यानन्द ब्रह्मसुख को भोगो यानी स्वरूपावरक भ्रमात्मक भयप्रद दुःखस्वरूप भेददृष्टि रूप अविद्या का कभी भी आलम्बन मत करो अर्थात् अपने अद्वयभूमा आत्मारामी, सगुणनिर्गुणातीत सुखस्वरूप से कभी च्युत न होओ, सदैव अन्तः सुखी ।

" द्वैताद्वैत विवर्जितम् "　　(अव०गी०)

द्वैताद्वैत वर्जित अपने निर्द्वन्द्व समस्वरूप में हो स्थित रहो यानी

"यत्र त्वस्यसर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" (बृ०उ०४।५।१५)

इस श्रुतिसिद्धान्तानुसार, महा उन्मनी देहाध्यासाभाविनी, तुरीयातीतावस्था में स्थित रहो, कभी भी बन्धन प्रद

"यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति" (बृ०उ०४/५।१५)

द्वैतदृष्टि के द्वारा बाह्य पदार्थों का आलम्बन मत करो; क्योंकि

" आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥" (बृ०उ०४।४।१२)

आप्तकाम, पूर्णकाम आत्मदर्शी ब्रह्मानन्द के आस्वादन में तन्मय होने के कारण स्वात्मा से परित्यक्त आरोपित प्रतीतिमात्र अध्यस्त मिथ्या शरीर के पीछे सन्तप्त नहीं होता; अपितु

" आत्मलाभान्न परं विद्यते " (स्मृति)
" स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा " (क०उ०१।२।१३)
" रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति "
"एष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवाऽऽनन्दयति"
(तै०उ० २/७)
"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥" (श्रीमद्भ०६।२२)

इन शास्त्रों के अनुसार, सदैव हृदयाकाशस्थ चिद्घानन्द आत्मलाभरूप परमात्म-लाभ में ही तृप्त, उसी के महामोद से नित्य मुदित एवं उस ब्रह्मरस-ब्रह्मामृत-स्वरूपामृत को पीकर सदा आनन्दित रहता है, उस

"प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा" (बृ०उ०१।४।८)
"प्रियाणां त्वा प्रियपतिम्" (य०सं०२३।१९)
"आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" (बृ०उ०४।५।६)

जड़ द्रव्य वित्त, पुत्रादि समस्त लौकिक प्रिय वस्तुओं से निरतिशय प्रिय परम-प्रेमास्पद नित्यानन्द का आस्वादन—प्रत्यक्षीकरण

"आत्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत्" (अन्न०उ०१।४६)
"यावत्सर्वं न सं यत्तं तावदात्मा न लभ्यते" (अन्न०उ०१।४५)
इस आम्नायमस्तकादेशानुसार,

" यद्दृष्टं तन्नष्टम् "

" न कर्मणा न प्रजया धनेन " (कै० उ० २।३)

नाशवान् प्रतीतिमात्र दुःखप्रद कर्म, प्रजा एवं धन आदि अनात्म प्रत्यक्ष जागतिक वस्तुओं से संभव नहीं क्यों कि

"नाल्पे सुखमस्ति" (छा०उ०७।२३।१)
" यदल्पं तन्मर्त्यम् " (छा०उ०७।२४।१)

अल्प-परिवर्तनशील दुःखप्रद भौतिक वस्तुओं में सुख नहीं। सुख तो

" भूमैव सुखम् " (छा०उ०७।२३।१)
" आनन्दो ब्रह्म " (तै०उ०६।१)
" आत्मनः सुखस्वरूपम् " (श्रुति)
" तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा--
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥" (क०उ०२ २।१२)

बिना आत्मस्थ नित्यानन्द का आस्वादन किये कभी भी किसी को संभव नहीं।

" अशान्तस्य कुतः सुखम् " (श्रीमद्भ०२।६६)

भगवान इस गीतोक्त पद के द्वारा, अनात्म भौतिक प्रत्यक्षवाद का खण्डन करते हुए सर्वानुभूत वेदान्त सिद्धान्त का उद्घोष करते हुए कह रहे हैं कि ऐ देहाभिमानी, अनीश्वरवादियो ! जो जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि आदि दुःखों से ग्रस्त देहबुद्धि की अहमन्यता से युक्त हैं उन्हें,

"संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते ।
तन्मध्ये पतिते देहे सुखमासाद्यते कथम् ॥" (म०उ०६।२६)

इस श्रुति कथनानुसार, विकृत दुःखप्रद भौतिक वस्तुओं से शाश्वत सुख कहां कैसे प्राप्त होगा ? अर्थात् कभी भी किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त होगा, अपितु सदैव सर्वकाल में दुःखाकान्त ही रहेंगे । उनका

"आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनः" (श्रीमद्भ०८।१६)

जो यह पुनरावर्ती दुःखालय चन्द्रलोक--ब्रह्मलोक पर्यन्त संस्पर्शज भोगों के प्रति उड़ान है वह सुख का हेतु नहीं, अपितु पिण्ड-ब्रह्माण्ड के दुःख का ही हेतु बनेगा । इसीलिए भगवान् नित्यानन्द के नित्य जिज्ञासुओं का आवाहन करते हुए कह रहे हैं कि ऐ आशाश्वत दुःख प्रद भौतिक वस्तुओं का आलिंगन करने वाले दुःखाक्रान्त जीवो ! तुम दुःख से मुक्त होने के लिए दुःखप्रद भौतिक वस्तुओं का त्याग कर नित्यानन्दघन ब्रह्म का योग करो; क्योंकि बिना ब्रह्म का योग किए, बिना योगी बने दुःखाभाव संभव नहीं इसीलिए भगवान अर्जुन से दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए

"तस्माद्योगी भवाऽर्जुन" (श्रीमद्भ०६।४६)

"तं विद्याद्दुःखसंयोग वियोगं योगसंज्ञितम्" (श्रीमद्भ०६।२३)

ब्रह्मयोगी बनने का आदेश दे रहे हैं, क्योंकि यह दुःखों की परम्परा परमात्मा के अज्ञान--उसके वियोग से सृष्ट हुई है । अतः

"संयोगं योगमित्याहुर्जीवात्म परमात्मनोः" (श्रुति)

बिना उस ज्ञान--संयोग रूप योग के दुःखों से मुक्ति सम्भव नहीं । इसीलिए वेदान्त की यह स्पष्ट घोषणा है कि

" ज्ञानादेव तु कैवल्यम् " (श्रुति)

" ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः " (श्रुति)

" ज्ञानेनैव हि संसारविनाशो नैव कर्मणा " (स.हृ०उ०३५)

" ज्ञात्वा देवं सर्व पाशापहानिः " (श्वे० १।११)

" तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति (शु०य०स०३१।१८)

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥" (श्वे०उ०३।८)

"ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये" (कै०उ०१।९)

"अज्ञानादेव हि संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते" (यो०त०उ०१।१६)

" ज्ञानान्मुक्तिः " (सां०द०३।२०)

" परमार्द्वतविज्ञानात्संसारः प्रविनश्यति "

"विना ज्ञानेन मुक्तिस्तु न सिध्यति न सिध्यति"

" विना ज्ञानं न कैवल्यमित्याहुर्वेदवित्तमाः "

"तस्माद्विज्ञानतो मुक्तिर्नान्यथा कर्मकोटिभिः"

"संसार दुःख तप्तानामारम ज्ञानामृताम्भसा ।

तापशान्तिर्न चान्येन सत्यमेव न संशयः ॥" (सू०सं०)

यही भगवान् सर्वोपनिषदिक गीता महाशास्त्र के द्वारा भी कह रहे हैं कि

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (श्रीमद्भ०४।३८)

"यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः" (श्रीमद्भ०१४।१)

"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ (श्रीमद्भ०१४।२)

भूमानन्द कैवल्यप्रद परम पवित्र विशुद्ध सद्यः दुःखनाशक पूर्णकाम ज्ञान के सदृश अन्य कोई अज्ञाननिवर्तक सुखप्रद साधन नहीं है। इसी से समस्त ऋषिमुनिगण मुक्त हुए हैं। इसी महा अद्वैत सर्व शोषक प्रलयान्तक महाज्ञान के गौरव से अजात्मा अमरात्मा जीव पुनः संसारचक्र में नहीं आता और न प्रलय कालीन व्यथा से ही व्यथित होता है। इसी के प्रभाव से

"अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥" (श्रीमद्भ०४।३६)

"ज्ञानयज्ञोद्भवेनैव ब्राह्मणोवाऽन्त्यजोऽपिवा।
संसार सागर तीर्त्वा मुक्ति पारं हि गच्छति ॥" (सू० सं०)

महा महा पातकी चाण्डालादि भी अज्ञान सागर को तरते। इसी

"ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म कांचनः ॥"
सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ (श्रीमद्भ०६।८-९)

महा विज्ञान के द्वारा तृप्तात्मा कूटस्थ इन्द्रियातीत महापुरुष मिट्टी—स्वर्ण, सुहृद मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धु, साधु एवं पातकी में सदैव समत्व बुद्धि से सम्पन्न रहता। इसी

"यथा रविः सर्वरसान्प्रभुंक्ते हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः।
तथैव योगी विषयान्भुंक्ते न लिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ॥"

(अव० उ० १

" पद्मपत्रं यथा तोयैः स्वस्थैरपि न लिप्यते ।
तथा शब्दादिभिर्ज्ञानी विषयैर्न हि लिप्यते ॥"　　(सू० सं०)

निर्विकार निर्लिप्त ज्ञान की महामहिमा से महात्मा एवं विषयों का यथेच्छ उपभोग करता हुआ भी पुण्य–पाप से लिप्त नहीं होता, सदैव निष्कलंक निर्विकार शुद्ध मुक्त हो रहता है । इसी मुक्त ज्ञान से

" देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ॥"　　(स०र०उ०३१)

बन्धनप्रद देहाभिमान के शेष हो जाने पर महात्मा सर्वात्म दृष्टि से सम्पन्न होता । इसी

" विषयानन्दवाञ्छा मेमा भूदानन्दरूपतः "　(बा०प्र०उ०१५)

" वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः ।
अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः ॥"　　(अ०उ०४१)

भूमानन्दात्मक वासनाशामक एवं अहंनाशक परमाद्वैत पूर्ण ज्ञान के द्वारा विषयवासनाओं का अभाव होने के कारण बोध परवैराग्य—पूर्ण असंगस्वरूप अद्वय स्वरूपस्थिति को प्राप्त करता । इसी ज्ञान–दृष्टि के द्वारा

"सर्वगं सच्चिदानन्दं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते "　　(व०उ०१।१८)

"क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति न तरे माययावृताः"　(अ०उ०४।३६)

माया से मुक्त क्षीणदोष पुरुष सर्वगत सच्चिदानन्द स्वरूप स्वात्मा को सर्वत्र साश्चर्य देखता । इसी की महिमा से जीव

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"　(क०उ०२।१।११)

द्वैत दर्शनरूप पुनर्जन्म से मुक्त हो,

" न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते " (छा०उ०८।१५।१)

के सिद्धान्त से, अद्वैतात्मज्ञान स्वरूप अपुनर्भवा-अजातावस्था को प्राप्त करता। इसी

"चिद्रूपस्यात्मनः साक्षाद्ब्रह्मतामाह हि श्रुतिः ।
ब्रह्मणः कर्मसम्बन्धाभावं चाऽऽह परा श्रुतिः ॥" (सू० सं०)

ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के द्वारा जीव अपने को चिद्रूप ब्रह्मस्वरूप जानने के कारण कर्मबन्धन से मुक्त होता। इसी

"देहात्मज्ञान वज्ज्ञानं देहात्मज्ञान बाधकम् ।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ॥ (व०उ०१।१५-१६)

देहात्मज्ञान बाधक आत्मज्ञान के द्वारा आत्मस्थ जीव न चाहने पर भी अनात्माभाव होने के कारण बलात् मुक्त होता। इसी

"अधिष्ठानं समस्तस्य जगतः सत्यचिद्घनम् ।
अहमस्मीति निश्चित्य वीतशोकोभवेन्मुनिः ॥" (अ०उ०४।३५)

अहमात्मक अधिष्ठान स्वरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के ज्ञान के द्वारा मुनिः शोक-मोह से मुक्त होते। इसी

'स्वस्मिन्नध्यस्तरूपस्य प्रपंचस्य तु साक्षिणम् ।
आत्मानमात्मना पश्यन्कथं बध्येत कर्मणा ॥" (सू०सं०)

ब्रह्मज्ञान के द्वारा जीव अध्यस्त विश्व प्रपंच के साक्षी अधिष्ठान स्वरूप स्वात्म-साक्षात्कार के कारण कर्म से नहीं बंधता। इसी

" परमामृतनाम्नी सा समतैवावशिष्यते "　　(म०उ०६।२)

परमामृतनाम्नी अद्वैतामृतवर्षिणी साम्यामृत से तृप्त समदर्शी पुरुष जीवन्मुक्ता-वस्था को प्राप्त करता । इसी से

" आत्मक्रीड आत्मरतिरात्मवान्समदर्शनः" (ना०प०उ०५।२५)

आत्मारामी आत्मक्रीड आत्मवान् स्वसंवेद्यानुभूत से सम्पन्न हो, बन्धन के हेतु-भूत समस्त कामनाओं के कलंक से मुक्त, निष्कलंक शिवस्वरूप होता । इसी

" रसो वै सः "　　(तै०उ०२।७)

" रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति "　　(तै०उ०२।७)

रसामृत—ज्ञानामृत से सांसारिक रसासक्ति का निःशेषतः निर्मूलन होता और इसी महामोदरूप ब्रह्मानन्दमोदक को प्राप्तकर पुरुष आनन्दित महामुदित होता । इसी

" ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते "　　(व०उ०२।४४)

मोहनाशक स्वरूपज्ञान के द्वारा जीव निर्मम हो कैवल्य लाभ करता । इसी,

" इदं रम्यमिदं नेति बीजं ते दुःख संततेः ।
तस्मिन्साम्याग्निना दग्धे दुःखस्यावसरः कुतः ॥"　　(अन्न०उ०५।७०)

ज्ञानाग्नि--साम्याग्नि के द्वारा दुःखसंतति के बीज रम्यारम्य का दग्धीकरण होता और नित्यानन्द की नित्य प्राप्ति होती । इसी से

" यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥" (क०उ०२।३।१४)

मरणधर्मा जीव अमृतत्व को प्राप्त करता । इसी

" भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥" (मु०उ०२।२।

परावरैकत्वग्राहक महाविज्ञान के द्वारा बन्धन प्रद अन्योन्याध्यासात्मक चिदचिद्जड़ग्रन्थि–अविद्योपाहित चैतन्य जीवत्वभाव शान्त होता, ज्ञेय ब्रह्म विषयक सर्व–संशय समाप्त होते और प्रारब्ध, संचित आदि समस्त कर्म नष्ट होते। कहां तक कहा जाय, इसकी महिमा अनन्त है, क्योंकि यह ज्ञान,

"प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐ०उ०५।४)

इस महावाक्यानुसार, ब्रह्मस्वरूप है। अतएव यह अवाङ्मनसगोचर परमपवित्र विशुद्ध—निर्विकार ब्रह्मज्ञान अनिर्वचनीय, केवल स्वसंवेद्य है। अतः इसकी तुलना किसी भी,

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (श्रीमद्भ०४।३८)

"तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणी तराणि च।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता॥"

(श्रीमद्भा०११।१९।४)

निर्वचनात्मक अपवित्र, विकृत, मायिक तप, तीर्थ, जप, यज्ञ, दान, धर्म कर्म, भक्ति, योग, सांख्य आदि साधनों से संभव नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि कर्म, सांख्य, योग, उपासना आदि साधन मल–विक्षेप के शमनार्थ अपेक्षित हैं, परन्तु मुक्त्यर्थ ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं। अतः ये ज्ञान सापेक्ष साधन हैं स्वतंत्र नहीं, परन्तु ज्ञान,

"तमो निवृत्तौ सूर्यस्तु यथा नान्यदपेक्षते।
तथाऽज्ञान निवृत्तौ तु ज्ञानं नान्यदपेक्षते॥" (सू॰ सं॰)

सूर्यवत् अज्ञानस्वरूप अन्धकार को निवृत्त करने के लिए किसी भी साधन की अपेक्षा नहीं रखता। यह साक्षात् सद्यः मुक्ति का निरपेक्ष स्वतन्त्र साधन है। यही,

" यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽन्तरो-
यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि
शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त
आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥" (बृ०उ०३।७।१५)

अन्तर्यामी अमृतात्मा ज्ञान अदृष्टरूपेण समस्त ब्रह्माण्ड का नियमन करता। इसी

" भयादस्याग्निस् तपति भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥" (क०उ०२।३।३)

सर्व समर्थ के भय से अग्नि तपती; सूर्य, इन्द्र तथा वायु आदि एवं मृत्यु अपने अपने व्यापार में नित्य नियमित रूपेण वर्तते । इसी

" एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा पृथिव्यौ
विधृते तिष्ठतः ॥" (बृ०उ०३।८।९)

के प्रशासन में द्युलोक एवं पृथ्वी अपने स्थान पर स्थित हैं । यही

" तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् " (क०उ०२।२।१५)

" यश्चविश्वं सृजति विश्वं बिभर्ति विश्वं भुंक्ते स आत्मा "
(शा०उ०२)

विश्वाधिष्ठान, विश्वावभासक, विश्वभर्ता, विश्वात्मा अपना निजानन्द है । यही

" तस्यभासा सर्वमिदं विभाति " (क०उ०२।२।१५)

सर्वानुकूल, सर्वप्रकाशक, सर्वात्मा रात्रि-दिन, सुख-दुःख, धर्माधर्म, पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्ष, जीव-शिव, जड़-चैतन्यात्मक समस्त विरोधी द्वन्द्वात्मक जगत् को अविरोधरूपेण प्रकाशित करता । इसी

" एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति "

(बृ०उ०४।३।३२)

पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा के लेशानन्द से विश्व के समस्त प्राणी—आनन्दान्वित रहते और उसकी प्राप्ति के लिए सतत् व्यग्र--प्रयत्नशील रहते । इसी

" यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति " (क०उ०२।१।६)

अनुदित–नित्योदित सत्ता में विश्व उदय–अस्त को प्राप्त होता रहता । यही

" रसो वै सः " (तै०उ०२ ७)

" रसो वै मधुः " (श्रुति)

" सर्वं गन्धः सर्वंरसः " (छा०उ० ३।१४।२)

" सुखात्सुखम् " (ते०वि०उ० :।४५)

" स सारः सर्वसाराणाम् " (अन्न०उ०४।७०)

समस्त रसों का रस, सर्वसुखों का सुख, सर्वमाधुर्यों का माधुर्य, सर्व सारों का सार तत्व है । यही

" सर्वस्य द्रष्टा " (नृ०उ०उ०२)

" ज्योतिषां ज्योतिः " (त्रि०म०उ०४।१)

सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक, सूर्य-चन्द्रादि ज्योतियों की परमचैतन्यज्योति है । यही

"आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" (बृ०उ०४।५।६)

परम प्रेमास्पदभूत प्रियतम तत्व सबको प्रिय है । इसी से विश्व के अस्तित्व, प्रियत्व एवं प्रतीति का भान होता । यही

" सा काष्ठा सा परा गतिः " (क०उ०१।३।११

जीवों की परम गति परमावधि प्राप्तव्य परम तत्त्व है । इसी

"जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचंयत्प्रकाशते तद्ब्रह्म" (कं०उ०१।१७)

अखण्ड सर्वसाक्षी आत्मा से जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि प्रपंच प्रकाशित होते। यही :

" श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोह वाचं–
स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुः (के०उ०१।२)

इन्द्रियातीत: अमृतात्मा श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन, वाणी का वाणी, प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु है। इसी

" येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतंमतमविज्ञातं विज्ञातमिति "
(छा०उ०६।१।३)

एक अद्वयात्मा श्रुत के श्रवण से अश्रुत श्रुत, अमत मत, अविज्ञात विज्ञात होता। इसी

"! यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वंविद्धि नेदं यदिदमुपासते॥" (के०उ०१।४)

वाचातीत चैतन्य तत्त्व के द्वारा वाणी बोलती। इसी

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्म त्वंविद्धि नेदं यदिदमुपासते॥" (के०उ०१।५)

मननातीत साक्षी तत्त्व से मन मनन करता। इसी

" यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥" (के०उ०१।६)

" न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्"
(बृ०उ०४।३।२३)

अविनाशी अलुप्त द्रष्टा के द्वारा दृष्टि का दर्शन होता । इसी

" यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्र मिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" (के०उ०१७)

श्रोत्रातीत अवणीय तत्त्व से श्रोत्र श्रवण करता । इसी

" यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" (के०उ०१।८)
" प्राणस्य प्राणम् " (बृ०उ०४।४।१८)

चैतन्य प्राणात्मा से वह प्राण प्राणन क्रिया को प्राप्त करता। यह लोक—जनों से उपास्य देश कालावच्छिन्न ब्रह्म ब्रह्म नहीं है । वह

" यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥" (के०उ०२।११)
"अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि " (के०उ०१।३)

विज्ञाता बुद्धि के विज्ञान का विषय नहीं है; अपितु जहां बुद्धि का विज्ञान-विवेक शान्त हो जाता, वहां उसका प्रकाश होता है । वह बुद्धि के धर्म मत—अमत, विदित—अविदित से परे है ।

" बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥"(श्रीमद्भ०२।५०)
" कर्मण्यकर्म यः पश्येत् " (श्रीमद्भ०४।१८)
" समत्वं योग उच्यते " (श्रीमद्भ०२।४८)

इसी परावरेश ज्ञान के द्वारा समत्वरूप योग से सम्पन्न कर्म के कौशलत्व अर्थात कर्म के अकर्मत्व—निष्क्रियत्व ब्रह्मत्व को प्राप्त अपने अजरत्व, अमरत्व में प्रति-

ष्ठित निरहं योगी यहीं जीवनकाल में सुकृत-दुष्कृतात्मक योनियों का निरोध कर देता। यहीं पर

" जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित्।
न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव हि पश्यति॥"

(पा०ब्रा०उ०२४-२५)

आश्चर्यमूर्ति ब्रह्मात्मैक्यदर्शी ब्रह्मदृष्टि से जगत, जीवादि को देखता हुआ भी परमार्थदृष्टि से उन्हें नहीं देखता, केवल जगदधिष्ठान ब्रह्मतत्त्व को ही देखता है। इसी सर्वाश्चर्यमय अवस्था में

" अहमन्नं सदाऽन्नाद इति हि ब्रह्मवेदनम्।
ब्रह्मविद्ग्रसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैव तु॥

(पा०ब्र०उ०३८-१६)

भोक्ता-भोग्य को सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि के द्वारा ब्रह्मवित् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ब्रह्म-रूपेण ही ग्रहण करता। इसी सर्वाश्चर्यमयी ब्राह्मी अवस्था में,

निस्पृहं मानसं यस्य नैराश्येऽपि महात्मनः।
तस्यात्मज्ञान तृप्तस्य तुलना केन जायते॥
अंतर्विकल्प शून्यस्य बहिः स्वच्छन्द चारिणः।
भ्रान्तस्येव दशा स्तास्तास्तादृशा एव जानते॥
न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न मीलति।
अहो पर दशा क्वापि वर्तते मुक्त चेतसः॥
स्वाराज्ये भैक्ष्य वृत्तौ च लाभालाभे जने वने।
निर्विकल्प स्वभावस्य न विशेषोऽस्ति योगिनः॥

सर्वत्र दृश्यते स्वस्थः सर्वत्र विमलाशयः ।
समस्त वासना मुक्तो मुक्तः सर्वत्र राजते ॥
विक्षेपे न विक्षिप्तः समाधौ न समाधिमान् ।
जाड्येऽपि न जडो धन्यः पाण्डित्येऽपि न पण्डितः ॥
न धावति जनाकीर्णं नारण्यमुपशान्त धीः ।
यथा तथा यत्र तत्र समएवावतिष्ठते ॥
कृतं देहेन कर्मेदं न मया शुद्ध रूपिणा ।
इति चिन्तानुरोधी यः कुर्वन्नपि करोति न ॥
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा नैव धीरस्य दुर्ग्रहः ।
यदायत्कर्तुमायाति तत्कृत्वा तिष्ठतः सुखम् ॥ (अष्टा० गी०)
आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्तमहमेवेति निश्चयी ।
निर्विकल्पः शुचिः शान्तः प्राप्ताप्राप्त विनिर्वृतः ॥
मनः प्रकाश संमोहस्वप्न जाड्य विवर्जितः ।
दशां कामपि सम्प्राप्तो भवेद् गलित मानसः ॥
निर्वासनो निरालम्बः स्वच्छन्दो मुक्त बंधनः ।
क्षिप्तः संसार वातेन चेष्टते शुष्क पर्णवत् ॥
सर्वत्र विगत स्नेहो यः साक्षिवदवस्थितः ।
निरिच्छं वर्तते कार्ये महाकर्त्ता स उच्यते ॥
न किंचन द्वेष्टि तथा न किंचिदाभिकांक्षति ।
भुंक्ते च प्रकृतं सर्वं महाभोक्ता स उच्यते ॥

सर्वेच्छाः सकलाः शंकाः सर्वेहाः सर्व निश्चयाः ।
धिया येन परित्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥

सुप्तः प्रबुद्धो भवति प्रबुद्धोऽपि च सुप्तवान् ।
सर्वं कर्मं करोत्यन्तर्न करोति च किंचन ॥ (यो० वा०)

तिष्ठन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति ।
शान्तोऽपि व्यवहारस्थः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ (सं० उ० २।३३)

विरक्तो विषय द्वेष्टा रागी विषय लोलुपः ।
ग्रहमोक्ष विहीनस्तु न विरक्तो न रागवान् ॥ (अष्टा०)

ब्रह्मानन्द रसः पीत्वा योऽपि उन्मत्त योगिनः ।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भाति का कथा नृप कीटकः ॥

विहरज्जनता वृन्दे देहस्तैन पूजनैः ।
खेदाह्लादौ न जानन्ति प्रतिबिम्ब गतेष्वपि ॥ (यो०वा०)

अन्तर्मुखतया नित्यं सुप्तो बुद्धो व्रजन् पठन् ।
पुरं जनंपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति ॥ (अन्न०उ०१।३४)

येनकेन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः ।
यत्रक्वचनशायी च स सम्राडिवराजते ॥ (यो० वा०)

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः ।
बहिरन्तः सदानन्द रसास्वादन मात्मनि ॥ (अ०उ०२७)

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ।
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥ (अ०उ०२०)

ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्वस्तुतोऽवस्तुतोऽपि च ।
तथैव ब्रह्मविज्ञानी किं गृह्णाति जहाति किम् ॥ (पा०शु०ब्र०उ० २५)

अविशेषेण सर्वं तु यः पश्यति चिदन्वयात् ।
स एव साक्षाद्विज्ञानी स शिवः स हरिर्विधिः ॥ (व०उ०२।३)

विलसन्ति महाभोगैर्विशन्ति गिरिगह्वरान् ।
निरस्तकल्पना धीरा अबद्धा मुक्तबुद्धयः ॥

स्वातन्त्र्यात्सुखमाप्नोति स्वातन्त्र्याल्लभते परम् ।
स्वातन्त्र्यान्निर्वृतिं गच्छेत् स्वातन्त्र्यात्परमं पदम् ॥

सुखमास्ते सुखं शेते सुखमायाति याति च ।
सुखं वक्ति सुखं भुंक्ते व्यवहारेऽपि शान्तधीः ॥ (अष्टा०गी०)

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः ।
स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ (अ०उ० १)

अन्तर्मुखतया तिष्ठन्बहिर्वृत्तिपरोऽपि सन् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥ (अक्षि०उ० ३७)

ब्रह्मविज्ञानसंपन्नः प्रतीतमखिलं जगत् ।
पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक् ॥ (पा०ब्र०उ० ४६)

ध्यायन्नास्ते मुनिश्चैव आसुप्तेरामृतेस्तु यः ।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः स धन्यः कृतकृत्यवान् ॥ (यो०कु०उ० १।३)

आत्मविश्रान्तितृप्तेन निराशेन गतारिणा ।
अन्तर्यदनुभूयेत तत्कथं कस्य कथ्यते ॥

सन्तुष्टोऽपि न संतुष्टः खिन्नोऽपि न खिद्यते ।
तस्याश्चर्यं दशां तां तां तादृशा एव जानते ॥ (अष्टा०गी०)

सर्वतंत्रस्वतंत्र, सर्वात्मदर्शी निरहम् ब्रह्मभूत पुरुष सर्वत्र समदर्शन-सम्पन्न होने के कारण उक्त निर्दिष्ट शास्त्र-वचनानुसार सांसारिक सब द्वन्द्वों का अतिक्रमण करता हुआ महाकर्तृत्व, महाभोक्तृत्व, एव महात्यागित्व के सामर्थ्य से सम्पन्न हो सदैव परमाश्चर्यस्वरूप स्वसंवेद्यानंद में निमग्न रहता । यहीं पर वह आत्मारामो,

" स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः ।
निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ॥
नित्यतृप्तोऽप्य भुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ।
कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ॥
शरीर्यप्य शरीर्येव परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः । (आ०उ०१२-१४)

सर्वत्र सर्वात्मरूप से स्थित होने के कारण स्वरूप से ही परम सन्तुष्ट होता । अतः शरीर से निर्धन प्रतीत होने पर भी स्वात्म दृष्टि से

" आत्मलाभान्न परं विद्यते "
" समोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा " (क०उ०१।२।१३)

के सिद्धान्त से, महाधनवान्, आत्म लाभ रूप परम लाभ से लाभान्वित अति सन्तुष्ट महामुदित होता । बाह्य दृष्टि से असहाय दिखाई देने पर भी अन्तरात्म दृष्टि से सर्वसमर्थ है । भोगी न होने पर भी नित्य स्वरूपानन्द में तृप्त रहता और विषम व्यापारवान् होने पर भी सर्वत्र ब्रह्मदर्शन के कारण समदर्शी है, कर्म करता हुआ भी अकर्ता है एवं बाह्य दृष्टि से भोक्ता होने पर भी अभोक्ता है । वह व्यापक निर्गुण निराकार भूमा पुरुष शरीरवान्—सगुण सविशेष होने पर

भी परमार्थ दृष्टि से शरीर रहित निर्गुण निर्विशेष है और वह अनवच्छिन्न चिदाकाश पुरुष शरीरस्थ परिच्छिन्न होने पर भी अपरिच्छिन्न सर्वगत एवं सर्व देश, काल, वस्तु में अनुस्यूत सर्वात्मा है। यहीं पर वह सर्वात्मदर्शी,

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।" (श्रीमद्भ० १३।१३)

सर्वात्मा सर्वरूप विश्वविराटो पुरुष सब ओर से हाथ, पैर, आंख, शिर, मुख और कान से युक्त हो, समस्त ब्रह्माण्ड को धारण कर अपने असंगत्व योगैश्वर्य भूमाकर महामहिमा में स्थित रहता। अथवा वह

"अचक्षु. विश्व तश्चक्षुः अकर्णो विश्वतः कर्णो
अपादो विश्वतः पादऽपाणिः विश्वतः पाणिः" (श्रुति)

सोपाधिक दृष्टि से सर्वत्र चक्षु, कर्ण; पाणि, पाद वाला होने पर भी निरुपाधि दृष्टि से चक्षु पाणि पादादि अवयवों से रहित निरवयव, निर्गुण, निराकार है। यह

"ब्रह्मवेद ब्रह्मैवभवति" (मु०उ० ३।२।९)

ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता जीवन्मुक्त की सर्वाश्चर्यमयी स्वसंवेद्य अनुभूति है। जिस

"तच्च लोको न गाहते" (मा० का०)

महात्मा नो के ज्ञान का अवगाहन लोक के महाविद्वान् भी नहीं कर पाते वहीं पर

आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वं रूपेऽथवा ततें।
को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥ (अन्न०उ०२ २५)
"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥" (आ०उ० ११)

"प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ (मु०उ०३।१।४)

वह प्राणस्वरूप परात्मवित् जीवन्मुक्त स्वात्मा से सर्वप्राणियों को प्रकाशित यानी सबको परम प्रेमास्पद प्रियतम स्वात्मा के रूप में देखने के कारण आत्मरति, क्रीडा, विनोद में तन्मय होने के कारण अतिशय अद्वैतनिष्ठ हो, अतिवादित्व से मुक्त होता अर्थात्

"यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं वदेत्" (बृ०उ०४।५।१५)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, सर्वात्मत्व को प्राप्तकर महामौनी हो जाता, फिर ऐसी महानिर्वाण-ब्राह्मी अवस्था में अपारमार्थिक मायिक बन्ध-मोक्ष, सृष्टि-प्रलय, साधक एवं सिद्ध की बुद्धि समाप्त होकर केवल महापरमार्थ स्वात्मदृष्टि ही अवशिष्ट रहती क्योंकि

"न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किंचिन्न जायते ॥" (मा० का०)

"नजायते म्रियते वा कदाचित्"
"अजो नित्यः शाश्वत ऽयं पुराणः" (श्रीगी०२ २०)

'न जायते म्रियते किंचिदत्र जगत्त्रये" यो०वा०उ०प्र०१२४।१५)
"प्रकृत्या आकाशवज्ज्ञेया सर्वे जीवा अनादयः" (स्मृति)

कोई भी जीव पैदा नहीं हुआ, इसलिए कि जीव स्वभावतः अज है । अतः ऐसी स्थिति में उस आत्मा का जन्म, प्रलय, बन्ध, मोक्ष आदि संभव नहीं । यह

जो शास्त्रों में सृष्टि, स्थिति, प्रलय, बन्ध, मोक्ष, साधक, सिद्ध आदि की कल्पनाएं हैं, वे सब साधकों के लिए हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से काल्पनिक मायिक, मिथ्या हैं। वस्तुतः

"सर्व वेदान्त सिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः।
स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥"

(कृ०उ०४२.४३)

रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैवयद्वद्रज्जु हि सर्पिणी।
भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला ॥

(यो०शि०उ०४।४।२)

समस्त वेदान्त का सिद्धान्तसार यही है कि विश्वविवर्ताधिष्ठान ब्रह्म ही अज्ञान से रज्जुसर्पवत् जगदाकार होकर भासता है। वस्तुतः उस

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ०उ०६१)

"स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः।
न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः ॥"

(व०उ०२।११-१२)

एक अद्वितीय ब्रह्म से भिन्न जगत्, जीव, ईश्वर आदि एवं माया नाम की कोई वस्तु नहीं है कि सृष्टि संभव हो। यह वेदान्त का अत्यन्त गुह्यतम सर्वाश्चर्यमय अजातवादी सर्वोत्कृष्ट ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। यही

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥ (भ०गी०४।३७
"अजरोऽस्म्यमरोऽस्मीति य आत्मानं प्रपद्यते।
तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः प्रारब्धकल्पना ॥" (अ०उ०५५)

"समाधातुं बाह्य दृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुतिः ।" (अ० उ०५९)

"प्रारब्धकल्पनाप्यस्य देहस्य भ्रान्तिरेव हि ।" (अ०उ०९१)

"अज्ञानजन बोधार्थं प्रारब्धमिति चोच्यते" (ना०बि०उ०२९)

"ज्ञानयज्ञेन निष्ठानां नावाप्तं विद्यते क्वचित् ।
न हेयं विद्यते सर्वं ब्रह्मरूपेण भाति हि ॥" (सू०सं०)

ज्ञानाग्नि जीव–जगत् भाव के पोषक हेयोपादेय अज्ञानात्मक भ्रान्तिरूप प्रारब्ध आदि समस्त त्रिविध कर्मों को दग्धकर आप्तकाम अजर, अमर जीव को,

"प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऋ०सं०) (ऐ०उ०३।१।३)

इस महावाक्यानुसार, ज्ञानस्वरूप ब्रह्म बनाता और ब्रह्माण्ड को चिन्मयकर जड़-चेतन के भेद को समाप्त करता, बन्ध-मोक्ष; धर्माधर्म, सत्यासत्य, कर्माकर्म, पाप–पुण्य आदि समस्त द्वन्द्वात्मक जगत् को निर्विकार ब्रह्म रूप बनाकर समता के साम्राज्य पर आरूढ़ करता । यही

"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥" (श्रीमद्भ०२।७२)

अनात्मशोषक चैतन्य स्वरूप परम पवित्र-विशुद्ध महान्हिम संसारोच्छेदक, शोक-मोहविनाशक महाज्ञान प्राणान्त काल में भी निर्वाणानन्दस्वरूप परम पुरुषार्थ प्रदान करने में समर्थ है यही

"क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम" (श्रीमद्भ०१३।२)

मोहनिवर्तक, कैवल्यप्रद, वास्तविक सच्चा ज्ञान है । इसी से जीव सर्वदा शोक, मोह से मुक्त परमानन्द में मग्न रहता । इसी

"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते" (श्रीमद्भ०४।३७)

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥" (श्वे०उ०६।११)

सर्वभूताधिवासी कर्माध्यक्ष की अध्यक्षता-चेतनता-साक्षित्व में विश्व के समाधि पर्यन्त समस्त कर्म सम्पन्न होते अर्थात् ज्ञान में समस्त कर्मों का पर्यवसान होता यानी ज्ञान ही सर्वकर्मों का लक्ष्यभूत परमतत्त्व परमावधि है। इसी पूर्ण ज्ञान के द्वारा अक्षय जीव,

"जगज्जालपदार्थात्मा सर्वो एवाहमक्षयः" (म०उ०६।५७)

सम्पूर्ण जागतिक पदार्थों का आत्मा हो, कैवल्य लाभ करता इसी निःशेष परम अद्वैत ज्ञान से भूमि त्रय के क्षय के द्वारा मुक्तों की सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी एवं तुरीयावस्था को प्राप्तकर,

" तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु पश्यतः " (ई०उ०७)

एकत्वदर्शन से सम्पन्न शोक-मोह से सर्वथा मुक्त हो,

" आत्मारामा महात्मानस्ते महापदमागताः" (म०उ०४ ३१)

"आत्म क्रीड आत्मरतिरात्मवान् समदर्शनः" (ना०प०उ०५।२१)

आत्मवान्, अन्तः सुखी, आत्मारामी जीवन्मुक्त महात्मा परमपद परमात्मा को स्वात्मरूपेण, अनुभव कर,

"देहपातानन्तरं मुक्तिः विदेहमुक्तिः"
उपाधि विनिर्मुक्त घटाकाशवत्
" प्रारब्ध क्षयाद्विदेह मुक्तिः " (मुक्ति०उ०२।१)

उपाधिविनिर्मुक्त घटाकाशवत् प्रारब्धक्षय-देहपात के अनन्तर विदेहमुक्ति—

" न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते " (छा०उ०८।१५।१)

(इस श्रुतिसिद्धान्तानुसार) ब्रह्मात्मैकत्वरूप अपुनरावर्ती कैवल्यसुख को प्राप्त करता है । इसी

"परमाद्वैत निष्ठा हि निष्ठा काष्ठा सुदुर्लभा" (सू० सं०)

सुदुर्लभ परम अद्वैत काष्ठा ज्ञान के द्वारा अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य—जीवत्वभाव समाप्त होता । इसी से समस्त द्वैत, अद्वैत, त्रैत, अनेक-एक वीरवाद आदि का संशय शान्त होता । इसी से देहाध्यास की समाप्ति के पश्चात् जीव क्षुद्रता से मुक्त हो अपने परमार्थिक ब्रह्मस्वाद-प्रतिष्ठा को प्राप्त करता । इसी

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० उ० २।१)

वाचातीत महाभैभवस्वरूप सत्य अनन्त व्यापक ज्ञान के द्वारा,

"अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा" (श्रीमद्भा० २।१०।३५)

"वेदोदितं महाद्वैतपरिज्ञानस्य गौरवम् । (सू० सं०)

जिज्ञासु अपने स्वरूप लक्ष्यभूत महत्त्वपूर्ण परम अद्वैत ब्रह्मतत्त्व को अन्वय-व्यतिरेक दृष्टि से सर्वत्र साश्चर्य देखता हुआ स्वयं भी आश्चर्य का विषय हो, आश्चर्यानन्द में मग्न रहता । उस काल में वह सगुण सविशेष शरीरधारी होने पर भी निर्गुण निर्विशेष हो,

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।" (श्वे० उ० ३ १९)

विना हाथ के ग्रहण करता और विना पैर के चलता तथा विना आँख के देखता और विना कान के सुनता । या यों कहिए कि,

"सगुण निर्गुणस्वरूपं ब्रह्म" (त्रि० म० उ० १ १)

इस श्रुतिसिद्धान्तानुसार, सगुण सविशेष एवं निर्गुण निर्विशेष सर्वसम निष्क्रिय ब्रह्म हो,

नैव किंचित्करोमीति
युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्र-
न्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।" (श्रीमद्भा० ५।८-९)

देखता हुआ भी नहीं देखता, सुनता हुआ भी नहीं सुनता, स्पर्श करता हुआ भी स्पर्श नहीं करता, सूंघता हुआ भी नहीं सूंघता, खाता हुआ भी नहीं खाता, चलता हुआ भी नहीं चलता, सोता हुआ भी नहीं सोता, श्वांस लेता हुआ भी नहीं श्वांस लेता, बोलता हुआ भी नहीं बोलता, त्याग करता हुआ भी नहीं त्याग करता एवं निमेषोन्मेष को प्राप्त होता हुआ भी उन्मेष-निमेष को नहीं प्राप्त होता

तिष्ठन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति।
शान्तोऽपि व्यवहारस्थः कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥" (स० ३०२.३३)

बैठते हुए भी नहीं बैठता, व्यवहारस्थ होने पर भी शान्त रहता, वह सदैव अपने

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" (श्वे० उ० ६।११)

साक्षित्व निर्विकारत्व में स्थित रहता वह इन्द्रियों के कर्माकर्म से कर्मी-अकर्मी नहीं होता। उस अधिष्ठानभूत अद्वय भूमा निर्गुण निर्विशेष पुरुष में अध्यस्त पिण्ड ब्रह्माण्ड का आत्यन्तिक अभाव होने के कारण कोई विक्षेप-आन्दोलन

नहीं होता । वह

"सच्चिदानन्दमोत्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्" (ते०बि०उ०६।६३)

सच्चिदानन्दमात्र'नुभूति से सम्पन्न हो, यह अनुभव करता कि मुझ सत्, चित्त आनन्द में असत्, जड़, दुःखस्वरूप जगत् त्रिकाल में भी सृष्ट नहीं हुआ, क्योंकि

"द्वितीयकारणाभावादनुत्पन्नमिदं जगत्" (म०उ०५।५८)

"न तु तद्द्वितीयमस्ति" (बृ०उ०४।३।२३)

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ०उ०६३)

"वस्तुनः स्वरूपापरित्यागेन वस्त्वन्तर मिथ्याप्रतीतिर्विवर्तः

यथा रज्ज्वावहेः शुक्तौ रजतस्य वा प्रतीतिः ॥

एक, अद्वय ब्रह्म से भिन्न अन्य की सत्ता का अभाव होने के कारण विवर्त विश्व रज्जुसर्पवत्, शुक्ति रजतवत्,

"ब्रह्मकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि" (ते०बि०उ०६।६९)

त्रिकाल भी नहीं है केवल

"वाचारम्भणं विकारोनामधेयम्" (छा०उ०६।१४)

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् ।

तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः ॥

रज्जुखण्डे परिज्ञाते सर्प रूपं न तिष्ठति ।

अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपंचे शून्यतां गते ॥ (ना०बि०उ०४।२६,२७)

वाचारम्भण—वाग्विलासमात्र है । जैसे रज्जु, का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण भ्रान्ति से सर्प की प्रतीति होती है, वस्तुतः उसके ज्ञान से इनका अभाव हो जाता, वैसे ही अधिष्ठानस्वरूप स्वात्मा के अज्ञान के कारण जगत् को

प्रतीति होती है और ज्ञान से प्रतीतिमात्र इस अध्यस्त जगत् का अभाव हो जाता है, क्योंकि अधिष्ठान में अध्यस्त की सत्ता हो नहीं होती और न अध्यस्त वस्तु से अधिष्ठान के स्वरूप में कोई विकार ही संभव है। यही भगवान् विष्णु का चतुःश्लोकी भागवत के द्वारा ब्रह्मा को भी उपदेश है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां य त्स्यात्सर्वत्र सर्वदा॥ (श्रीमद्भा० २।
९।३२-३५)

अथवा यों कहिए कि,

साक्षिभूते समे स्वच्छे निर्विकल्पे चिदात्मनि।
निरिच्छं प्रतिबिम्बति मुकुरे यथा॥ (म०उ०५।५५)

जैसे दर्पण का स्वभाव प्रतिबिम्बित होने का है वैसे ही साक्षिभूत सम, स्वच्छ, निर्विकल्प चिदात्मा में जगत निरिच्छित स्वाभाविक रूपेण प्रतिबिम्बित होता रहता है। अतः ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु नहीं है उसमें जो यह जगत जीवादि की प्रतीति होती है वह केवल माया का विलास मात्र है वस्तुतः उसकी कोई सत्ता नहीं है। यही श्रुति का आदेश है कि—

"सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्" (छा०उ०६।२ १)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्

नान्यत्किंचिन्मिषत्" (ऐ०उ० १।१)

सृष्टि के पूर्व एक, अद्वय सदात्मा ब्रह्म ही था, उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं थी। इसलिए कि,

"व्याप्यव्यापकतामिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्" (यो०शि०उ० ३।४।४)

आत्मातिरिक्त अन्य वस्तु का अभाव होने के कारण व्याप्य—व्यापकभाव भी मिथ्या अज्ञानमूलक है। यही भगवान् भी गीता महावाक्य के द्वारा कह रहे हैं कि:—

"मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति" (श्रीमद्भ० ७।७)

"न च मत्स्थानि भूतानि" (श्रीमद्भ०९।५)

मुझ एक अद्वय से भिन्न अन्याभाव होने के कारण ये भूतवर्ग मुझमें नहीं हैं, अतः इनका आत्यन्तिक अभाव है।

"नासतो विद्यते भावः" (श्रीमद्भ०२।१६)

"असद्वा इदमग्र आसीत्" (तै०उ०२।७)

"आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा" (मा०का०)

"आदावन्ते च यन्नास्ति कीदृशो तस्य सत्यता" (यो०ना०)

इस आदि-अन्तवान् असत् सृष्टि का त्रिकाल में भी भाव नहीं है, क्योंकि जो आदि-अन्त में नहीं होता, वह मध्य में भी नहीं होता,। यही भगवान्

"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।

अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥" (श्रीमद्भ०२।२८)

इस गीतोक्त पद से कह रहे हैं कि ये भूतवर्ग आदि-अन्त में अव्यक्त हैं, अतः मध्यकालीन प्रतीतिमात्र इस अव्यक्त मिथ्या जगत् को क्या उलाहना ? और क्या वेदना ? क्योंकि

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म ॥" (तै०उ०३।१)
'जन्माद्यस्य यतः' (ब्र०सू०१।१।२)

इसके आदि, मध्य, अन्त में वह परमानन्दमूर्ति परम प्रेमास्पद सत्य परमात्मा ही स्थित है, अतः उस शोकमोह विनाशक एक, अद्वय सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के दर्शन से शोक-मोह कहाँ ? क्योंकि

"घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः ।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥" (यो०शि०उ०४।१८)
"ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्" (मु०उ०२।२।११)
"जगद्रूपतयाऽप्येतद्ब्रह्मैव प्रतिभासते" (आ०उ०२)
"आत्मैवेदं सर्वम्" (छा०उ०७।२५।२)
"ब्रह्मैवेदं सर्वम्" (बृ०उ०२।५।१)
"सच्चिदानन्द रूपमिदं सर्वम्" (नृ०उ०उ०७)

जैसे पृथ्वी ही घटाकर और तन्तु ही पटाकार होकर भासता है, वैसे ही निखिल श्रेष्ठ ब्रह्म ही जगदाकार होकर भास रहा है । वही बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है अर्थात् ब्रह्म का ही नाम जगत् है जगत् नाम की कोई वस्तु नहीं इसीलिए परम अद्वैतनिष्ठ पूर्णात्मज्ञानी जीवन्मुक्त सर्वात्मदर्शी पुरुष,

"सर्वेच्छाः सकलाः शंकाः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः ।
धिया येन परित्यक्ताः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥" (म०उ०२।[illegible])

स्वरूपसाक्षात्कारोपरान्त सर्वेच्छाओं, शंकाओं, सर्वेहाओं एवं ब्रह्मसाक्षात्कार की हेतुभूता ब्रह्माकार वृत्ति एवं 'अहं ब्रह्म' आदि सर्व निश्चयों से मुक्त स्वरूपस्थ सर्वरूप हो,

!'जगज्जीवेश्वरत्वादि सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
इ ति स्वपूर्णविज्ञाने परमाद्वैत वेदनम् ॥" (सू०सं०)

"न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः ।
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥' (अ०उ०४६)

आत्मा, परमात्मा एवं जगत् में भेद नहीं देखते । वे

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥" (बृ० उ०५।१।१)

इस वेदमन्त्रानुसार, कार्य-कारण सबको कार्यकारणातीत पूर्ण ब्रह्म के रूप में देखते । वे,

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति
स भूमा' (छा०उ०७।२४।१

उस अद्वय निर्विषयिक भूमा-ब्रह्म में देखने, सुनने, समझने योग्य द्वैतोत्पादक विषयों का अभाव देखने के कारण,

"स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं
विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन
आत्मानन्दः स स्वराड् भवति
तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥" (छा०उ०७।२५।२)

सर्वत्र सर्वदा सर्व काल में चलते, फिरते, उठते,बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते

निरतिशयानन्द प्रदान करने वाले सर्वस्वरूप आत्मतत्व को ही देखते, उसी से रति, प्रीति, क्रीडा, विनोद करते, उसी से हँसते, बोलते, प्रेमालाप करते, उसी को खाते, पीते, चूसते, चाटते, उसी को लेकर सानन्द परमानन्द में मग्न हो सोते, उसी को जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय में देखते, उसी को स्वगत, स्वजातीय, विजातीय भेदों में अनुगत एवं अननुगत जानते; उसी को जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, कुमार एवं यौवनादि अवस्थाओं में देखते। उस

"अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपञ्च्यते"

निष्प्रपंच को प्रपंच के अध्यारोप एवं अपवाद में साक्षि रूप से देखते। उसी को

"स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्सपश्चात्स दक्षिणतः
स उत्तरतः स एवेदं सर्वम्" (छा०उ०७.२५।१)

नीचे, ऊपर, दाएँ, बाएँ, आगे, पीछे, उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम सर्वत्र सर्व रूपों में देखते। वे ब्रह्मविद्वरिष्ठ

"प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥" मु०उ०३।१

उस स्वरूपभूत परमानन्द परमेश्वर से समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित हुआ समझकर यह अनुभव करते कि,

"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्॥" (कै०उ०८-९)

वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, प्राण, अग्नि, भूत, वर्तमान, भविष्य आदि कालों के रूप में स्थित है, वही सूर्य, चन्द्र, तारा, विद्युत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, माया, जगत, दिक्, विदिक्, सागर, पहाड़, नदी, नद, वन, वीथी, जड़, चेतन, जीव, शिव, प्रकृति, पुरुष, बन्ध, मोक्ष, सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म, सज्जन, दुर्जन, आस्तिक, नास्तिक, धर्मी, अधर्मी, सूकर, कूकर, नर, नारी, बाल, वृद्ध, देव, दानव, मानव, सर्प, शृंगाल, सिंह, अण्डज, पिण्डज स्वेदज एवं उद्भिज रूपों में स्थित है, वह अपनी अमृतमयी, मधुमयी, रसमयी लीला से सर्वत्र रासलीला ब्रह्म लीला, आत्मलीला कर रहा है, सबको अपनी उन्मुक्त-ब्राह्मीदृष्टि से ब्रह्म बनाकर ब्रह्मामृत-ज्ञानामृत-स्वरूपामृत-साम्यामृत-स्वतन्त्रामृत पिलाकर अजर, अमर परमस्वतन्त्र बना रहा है। वह सर्वसमर्थ अपनी उन्मुक्त सहज एव मायिक दृष्टि से सबको मुक्ति प्रदान कर रहा है, अपनी प्रदीप्त ज्ञानाग्नि-ज्ञानरश्मि से जीवों को पांच भौतिक स्थूल जड़ पिण्ड से मुक्त कर चिन्मय बना रहा है। वह

"आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो न पश्यति।
ब्रह्मभूतः स एवेह वेदशास्त्र उदाहृतः॥" (स्मृति)
"निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः"

अन्वय-व्यतिरेक दृष्टि से ब्रह्मातिरिक्त दर्शन से मुक्त गुणातीत ब्रह्मभूत ब्रह्ममूर्ति वेदविधाता के विधान का अतिक्रमण करता हुआ,

सर्वथा वर्तमानोऽपि सयोगी मयि वर्तते" (श्रीमद्भ०६।३१)

इस भगवद्वचनानुसार, सर्व प्रकार के विधि-निषेधात्मक व्यापार को करता हुआ भी विधि-निषेध से परे सर्वथा मुक्त रहता। वह

"वेदैरनेकैरहमेव वेद्यः" (कै०उ०१।२२

वेद-वेद्य चैतन्य होने के कारण वेदों एवं वेद विधाता के बंधन में नहीं आता कभी भी अपने अद्वय चैतन्यभूतानिर्गुण-निर्विशेष स्वरूप में जड़ वेद एवं ईश्वर को नहीं देखता, सदैव अपनी अवाङ्मनसगोचरत्वेन सर्वतन्त्र स्वतंत्रावस्था में स्थित रहता। क्योंकि

"यदा हि युक्तमात्मानं सम्यक् पश्यति देहभृत्।
न तस्येश्वरः कश्चित त्रैलोक्यस्यापि यः प्रभुः॥

(महा०भा०आश्वमेधिक०अनु०१६।२४

ईशेशितव्य संबधः प्रत्यगज्ञान हेतुजः।
ज्ञानी ज्ञानात्तमोध्वस्तावीश्वराणामपीश्वरः॥ (वृ०वा०भा०

उस आत्मदर्शी का कोई शासक ईश्वर नहीं हैं। वह सर्वात्मा सर्वेश्वर ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसीलिए

"विदित्वा स्वात्मनो रूपं न बिभेति कुतश्चन" (व०उ०२।२१)
"ज्ञात्वा तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" (ना०पू०उ०६।१)

वह सर्वात्मदर्शी मृत्यु के मुख से मुक्त निर्भय, निर्द्वन्द्व अमरात्मा अजरात्मा, अजात्मा

"न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताम्" (छा०उ०७।२६।२)

मृत्यु, रोग एवं दुःखादि द्वन्द्वों को नहीं देखता, वह अपने नित्य निर्विकार अलिङ्ग रूप में,

"ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नाम सौन्दर्य जातयः।
सर्वे स्थूलगता ह्येते स्थूलाद्भिन्नस्य मे न हि॥

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यकाम क्रोधादयोऽखिला. ।
लिंगदेहगता ह्येते ह्यलिंगस्य न विद्यते ॥
जडत्वप्रियमोदत्व धर्माः कारणदेहगाः ।
न सन्ति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः ॥ (आ०प्र०उ०२२-२४)

स्थूल देह के धर्म ब्राह्मणादिक वर्ण, कुल, गोत्र, नाम, सौन्दर्य, जाति आदि को नहीं देखता। लिंग देहगत धर्म क्षुधा, पिपासा, आन्ध्य, बाधिर्य, काम, क्रोधादि को नहीं देखता एवं कारण देहगत जडत्व, प्रिय, मोदत्व धर्म को नहीं देखता, क्योंकि उसकी यह अनुभूति है कि

चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम ।
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत् ॥ (आ०प्र०उ० ३०)

चैतन्य स्वरूप होने के कारण मुझमें जड़ता नहीं, सत्यस्वरूप होने से मुझमें अनृत नहीं एवं आनन्द स्वरूप होने का कारण मुझमें दुःख नहीं है, क्यों कि मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ। स्वरूप के अज्ञान से ही मुझमें जड़ अनृतएवं दुःख का भान होता है। मुझ देहाभिमान देह रहित निर्गुण निर्विशेष पुरुष को,

"नाहं देहो जन्ममृत्यू कुतो मे
नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चेतः शोकमोहौ कुतो मे
नाहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥ (श्रुति)

जन्म–मृत्यु कहाँ ? मुझ प्राणात्मा को प्राण के धर्म क्षुधा, पिपासा कहाँ ? मुझ अचित्त में शोक–मोह कहाँ ? एवं मुझ अकर्ता मुक्तस्वरूप ब्रह्म में बन्ध–मोक्ष कहाँ ?

"नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरंगं
नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः।
दारापत्य क्षेत्रवित्तादि दूरः
साक्षी नित्यः प्रत्यगात्माशिवोऽहम् ॥
मनो बुद्धयहंकारचित्तादि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥"

"ब्रह्मैवाहं न संसारी ब्रह्मैवाहं न मे मनः।
ब्रह्मैवाहं न मे बुद्धिर्ब्रह्मैवाहं न चेन्द्रियम् ॥" (ते०बि०उ०)
ब्रह्मैवाहं न देहोऽहं ब्रह्मैवाहं न गोचरः।
ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ॥ (ते०बि०उ०६।१३)

मैं परम प्रेमास्पदस्वरूप क्षेत्रज्ञ आत्मा स्त्री, पुत्र, क्षेत्र, वित्तादि से पृथक्, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्तादि अन्तःकरणचतुष्टय, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण, नेत्रादि पंच-ज्ञानेन्द्रियों, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि पंचभूत जड़ दृश्यवर्ग से परे चिदानन्द-स्वरूप साक्षी नित्य प्रत्यगात्मा सदाशिव ब्रह्म हूं। इसी कारण से मुझ त्रिपुटी-रहित ज्ञानस्वरूप एक, अद्वय शुद्धात्मा में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण प्रमेय आदि अज्ञानात्मक त्रिपुटी नहीं। मुझ

"मनसोद्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टा सर्वस्य द्रष्टा', (नृ०उ०उ०२)
मन एवं बुद्धि के द्रष्टा-साक्षी सर्वात्मा में समाधि एवं विक्षेप नहीं है, क्योंकि

"विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्याद्विकारिणः" (अव०उ०२१)

समाधि एवं विक्षेप मन के विकार-धर्म हैं असंग, निर्विकार निरिन्द्रिय आत्मा के नहीं । अतः

"कृतकृत्यं प्रापणीयं प्राप्तमित्येव नित्यशः ।
व्यवहारो लौकिको वा शास्त्रीयो वाऽन्यथापि वा ।
ममाकर्तुरलेपस्य यथारब्धप्रवर्तताम् ॥
अथवा कृतकृत्येऽपि लोकानुग्रहकाम्यया ।
शास्त्रीयेणैव मार्गेण वर्तेऽहं मम का क्षतिः ॥ (अव०उ०२२-२३)

आरब्धानुसार लौकिक या शास्त्रीय या अशास्त्रीय व्यवहार करते हुए अथवा लोकानुग्रहार्थी शास्त्रानुसार वर्तते हुए मुझ कृतकृत्य, आप्तकाम, अक्षय, अकर्ता, निर्लिप्त आत्मा की क्या क्षति ? ऐसे ही

"प्राणाश्चलन्तु तद्धर्मैः कामैर्वा हन्यतां मनः ।
आनन्दवुद्धि पूर्णस्य मम दुःखं कथं भवेत् ॥" (आ०प्र०उ०२०)

प्राण के अपने धर्मानुसार चलने एवं मन के काम से प्रताड़ित-व्यथित होने पर भी मुझ आनन्द बुद्धि परिपूर्ण साक्षी भूमानन्दात्मा को क्या दुःख ? क्योंकि

" सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्ववाच्यविवर्जितः ।
सदा समाधिशून्यात्मा आदि मध्यान्तवर्जितः"

मैं सदैव सर्वानुभव निर्मुक्त, सर्ववाच्यविवर्जित, समाधिशून्य, आदि, मध्य, अन्त-रहित अपने अनन्तत्व में प्रतिष्ठित रहता हूँ । इसी प्रकार

" देवार्चन स्नान शौच भिक्षादौ वर्ततां वपुः ।
तारं जपतु वाक्तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तकम् ॥

विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् ।

साक्ष्यहं किंचिदेवात्र न कुर्वे नापि कारये ॥" (अव०उ०२४–२५)

शरीर के देवार्चन, स्नान, शौच, भिक्षादि कार्यों में प्रवृत्त होने पर वाणी के प्रणव के जप करने एवं आम्नायमस्तक-श्रुति के पाठ करने में तथा बुद्धि के विष्णु के ध्यान के परायण होने पर अथवा ब्रह्मानन्द में विलीन होने से, मैं असंग सुख स्वरूप साक्षी बनता न कुछ करता हूँ और इन्द्रियादिकों से ही कुछ कराता हूँ । इस प्रकार वह व्यतिरेकाधिरूढ न व्यतिरेकी महात्मा व्यतिरेक दृष्टि से यह अनुभव करता कि

'स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ।

न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः ॥" (व०उ०२।११-१२)

मुझ अधिष्ठान स्वरूप पूर्णात्मा से भिन्न अन्यस्त जगत्, जीव, ईश्वर एवं माया आदि की सत्ता नहीं है । इसी कारण से वह सर्वात्मदर्शी

"न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनोऽन्यन्न हि क्वचित्" (मन्०उ०५।५९)

आत्मातिरिक्त कुछ न देखने, सुनने; समझने के कारण किसी की निन्दा–स्तुति नहीं करता, सदैव अपने इन्द्रियातीत, अवाङ्मनसगोचर महामौनावस्था में सम शान्तरूपेणस्थित रहता । वह अपने महिमानहिम सर्वाश्चर्यमय रूप को देखता कि अहा ! मुझ

'ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं द्रष्टव्यमद्भुतम् ।

विश्रान्तोऽस्मिचिरं श्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्ति किंचन ॥" (म०उ०५।५८।५९)

ज्ञातव्य अद्भुत व्यापक आत्मा से यह ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण विश्व महाकल्पाम्बु की भाँति व्याप्त–परिपूर्ण है । अतः ऐसी महाव्यापका–आत्मारामा-

पूर्णकामा-परमानन्दा-महाविद्यावस्था में

"किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।
यन्मयापूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा ॥ (अ०उ०२।३५-३६)
किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विलक्षणम् ।
अखण्डानन्दपीयूष पूर्णब्रह्म महार्णवे ॥
न किंचिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्म्यहम् ।" (अ०उ०६६-६७)
"अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं
दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति," (छा०उ०७।२५।१)

मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या ग्रहण एवं क्या त्याग करूँ ? अब मुझ अखण्डानन्दामृतपूर्ण ब्रह्ममहार्णव के लिए क्या हेय ? क्या उपादेय ? क्या सामान्य ? एवं क्या विशेष रहा ? मैं ही नीचे, ऊपर, आगे, पीछे, दाएँ, बाएँ, सर्वत्र सर्व रूपों में स्थित सब में समाया हुआ हूँ । मैं ही सर्वत्र आनन्द की तरंगें—मौजें मार रहा हूँ, सर्वत्र अपने को ही देख, सुन, समझ रहा हूँ । मैं ही,

परोक्षरूपेण सुसंस्थितोऽहं तथाऽपरोक्षेण सुसंस्थितोऽहम् ।
अनात्मरूपेण सुसंस्थितोऽहं सदात्मरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ॥
जीवेनरूपेण सुसंस्थितोऽहं तथेशरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
अज्ञानरूपेण सुसंस्थितोऽहं विज्ञानरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ॥
संसाररूपेण सुसंस्थितोऽहं कैवल्यरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
शिष्यादिरूपेण सुसंस्थितोऽहं गुर्वादिरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ॥
वेदादिरूपेण सुसंस्थितोऽहं स्मृत्यादिरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।

पुराणरूपेण सुसंस्थितोऽहं कल्पादिरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ॥
कर्तृस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहं भोगस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
मोक्तृस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहं भोगस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
पुण्यस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहं पापस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
रुद्रप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं विष्णुप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
ब्रह्मप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं देवप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
देशप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं ग्रामप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
नदी प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं समुद्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
नक्षत्र भेदेन सुसंस्थितोऽहं ग्रह प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
मेघप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं विद्युत्प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
व्योमादिभेदेन सुसंस्थितोऽहं शब्दादिभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
शरीरभेदेन सुसंस्थितोऽहं प्राणप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
मनः प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं बुद्धि प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
अहं प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं चित्त प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
जाग्रत्प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं स्वप्नप्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
सुषुप्तिभेदेन सुसंस्थितोऽहं तुरीयभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ।
दृश्य प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहं द्रष्टृ प्रभेदेन सुसंस्थितोऽहम् ॥
साक्षि स्वरूपेण सुसंस्थितोऽहं सर्वस्वरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ।
स्वतंत्ररूपेण सुसंस्थितोऽहं सर्वात्मरूपेण सुसंस्थितोऽहम् ॥

स्वतंत्र सर्वात्म रूपेण सर्वत्र स्थित हूं, मेरे सौभाग्य की सीमा नहीं।

धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमञ्जसावेद्मि ।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम् ॥
धन्योऽहं धन्योऽहं दुःखं [illegible] ।

धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि।
धन्योऽहं धन्योऽहं कर्त्तव्यं मे न विद्यते किंचित् ॥

धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमत्र सम्पन्नम्।
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ॥

धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्यः पुनः पुनर्धन्यः।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् ॥

(अव० उ० २७-३०, ३२

मैं धन्य हूँ ! धन्य हूँ !! मैं नित्य निरानन्द स्वरूप स्वात्मा का स्वाद ले रहा हूँ। मैं धन्य हूं ! धन्य हूँ !! आज मुझे ब्रह्मानन्द सर्वत्र स्पष्ट भास रहा है। मैं उसे देख रहा हूं और वह मुझे देख रहा है। मैं वह हो गया हूं और वह मैं हो गया है। मै धन्य हूँ ! धन्य हूं !! आज मुझे स्वदर्शनानन्द के कारण सांसारिक दुःख नहीं दिखाई दे रहा है। मैं धन्य हूँ ! धन्य हूँ !! आश्चर्य है कि मेरा यह चिरकालिक अज्ञान क्षणमात्र में ही ज्ञानोदय के कारण सदा के लिए कहां चला गया ? मैं धन्य हूं ! धन्य हूँ !! अब मुझ आनन्द मूर्ति के लिए किंचित्मात्र भी कर्तव्य शेष नहीं रहा। मैं धन्य हूँ ! धन्य हूं !! आज मुझे सर्वस्वरूप प्राप्तव्य आत्मतत्त्व प्राप्त है। मैं धन्य हूँ ! धन्य हूँ !! आज मुझ तृप्तात्मा के सदृश त्रैलोक्य में कोई भी तृप्त नहीं है। मैं धन्य हूँ ! धन्य हूं !! बारम्बार धन्य ! धन्य ! कृतकृत्य हूं; अतः मेरा मुझको नमस्कार। अहो ज्ञान ! तू धन्य है। धन्य है।। तूने आज अज्ञान को ग्रस लिया। अहो सुख ! अहो सुख ! तू धन्य है ! धन्य है !! आज तूने दुःख का आत्यन्तिक प्रलय कर दिया। सर्वत्र भूमानन्द का साम्राज्य छाया हुआ है। मुझ ब्रह्मभूत का ब्रह्म सर्वत्र

आलिगन-स्वागत कर रहा है । मुझ स्वात्मारामी के लिए सुख-सुविधा-योगक्षे
की व्यवस्था कर रहा है । मुझ सर्वात्मदर्शी के समक्ष सर्वस्व धारण करा
उपस्थित हो रहा है । मैं सर्वस्वधारी सर्वस्व से उसका सर्वत्र आलिंग कर र
हूं, उससे प्रेम कर रहा हूं: चूम-चाट रहा हूं, उस व्यापक विस्तीर्ण भूमानन्
सागर में निरतिशयानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द, स्वरूपानन्द का स्वसम्वेद्य गो
लगा रहा हूं। बस, आनन्द से आनन्द का आस्वादन कर रहा हूं, उसे स
देख, सुन, समझ रहा हूं, उसके महामहोत्सव में मग्न हो रहा हू। वही
आगे, पीछे, दाएँ, बाएँ, नीचे, ऊपर बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र स्थित है । मैं
वही हू । मुझसे भिन्न अणुमात्र भी नहीं है । मैं सर्वत्र सबमें समाया हुआ हूं
तथा मैं

"अहमेवाखिलाधारः अहमेव सुखात्सुखम्" (ते०वि०उ०६।४५)
निर्गुण निरुपाधिक परमात्मा ही सोपाधिक अमृत अव्यय ब्रह्म की, शाश्वत स
तन धर्म की एवं ऐकान्तिक भूमा सुख की प्रतिष्ठा-आधार-मुदिता की सी
मैत्री की सीमा, एकता की सीमा, धारणा की सीमा, ध्यान की सीमा, सम
की सीमा, भक्ति की सीमा, ज्ञान की सीमा, वैराग्य की सीमा, कैवल्य
सीमा, सर्व की सीमा—पराकाष्ठा—विश्रान्तभूमि हूं । मैं ही

"अहं शास्त्रेण निर्णीतः अहं चित्तेऽव्यवस्थितः ।
सर्ववेदान्तसारोऽहम् " (ते०वि०उ०६।
अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः ॥ (ते०वि०उ०६।

सर्व शास्त्र निर्णीत, सर्ववेदान्त सार सर्वस्व, सर्वभूतान्तरात्मा प्रकृति से प
"शुद्ध बोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः । (अ०उ०

केवलाखण्ड बोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥" (कु०उ०२६)

" अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः " (ते०बि०उ०६।४४)

" अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्"(श्रीमद्भा०१२।५।१७)

गुणातीत शुद्ध बोध स्वरूप केवल सदाशिव अद्वैत भूमानन्दात्मा हूं। मैं केवल अखण्ड बोध स्वरूप नित्य स्वानन्दामृत मूर्ति परब्रह्म परम धाम परमपद परमाराध्य परमतत्त्व हूं। इस प्रकार की ब्रह्मानुभूति से सम्पन्न स्वात्मदर्शी सर्वरूपो विश्वदर्शी विराटो ब्रह्मभूत अतिवर्णाश्रमो परमहंस जीवन्मुक्त अवधूत परम स्वच्छंद महापुरुष

"यस्य वर्णाश्रमाचारोगलितः स्वात्मदर्शनात् ।
सोऽतिवर्णाश्रमीप्रोक्तः सर्ववेदार्थ वेदिभिः ॥" (ना०प०उ०६।३)

"संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः ।
अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥" (ना०प०उ०६।१२।१३)

"निःस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।
चलाचलनिकेतश्च यतिर्या दृच्छिको भवेत् ॥ (ना०प०उ० ६।३८)

"यन्न सन्तं न चा सन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृतं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः ॥" (ना०प०उ०४।३५)

"तस्मादलिंगो धर्मज्ञो ब्रह्मवृत्तमनुव्रतम् ।
गूढधर्माश्रितो विद्वान ज्ञातचरितं चरेत् ॥" (ना०प०४।३६)

"तं दृष्ट्वा शान्तमनसं स्पृहयन्ति दिवौकसः " (ना०प०उ०४।३७)

वर्णाश्रमाचार रहित, समस्त प्राणियों के संशय-संदेह का विषय बना हुआ, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हो, स्तुति, नमस्कार, स्वधाकार से रहित, शुक्र, मस्त, ऋभु,

निदाघ, ऋषभ, दत्तावत् स्वच्छन्द रूपेण पृथ्वी पर विचरता। उस परावरैकत्व-विज्ञान प्रदायिनि परमामृत नाम्नी साम्यामृत से तृप्त कृतकृत्य, अमृतात्मा, आत्मारामी, अलिंग गूढधर्माश्रित, स्वरूपानन्दाश्रित, अज्ञातचरिताश्रित महाज्ञानी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को समाज के महामहोपाध्याय विद्वान्-वेदवेत्ता महापण्डित भी विषय नहीं कर पाते।

" ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण
आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।। " (तै०उ०२।८)

ब्रह्मा से शताधिक आनन्द को प्राप्त भूमानन्दमग्नमना उस निर्वासनिक परम प्रशान्त,

" तं दर्शनेन सकलं जगत्पवित्रं भवति " (म०ब्रा०उ०५।१)

महापुरुष के दर्शन की सम्पूर्ण लोक लोकाधिपति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, शारदा एवं इन्द्र आदि देवगण भी अपने को पवित्र करने की इच्छा करते और दर्शनोपरान्त परमानन्द में मग्न हो, उस ब्रह्ममूर्ति-ब्रह्मभूत पुरुष की स्तुति करते। जैसा कि उपनिषदों एवं शास्त्रों में विवेचन-यशोगान किया गया है। भगवान भी सर्ववेद शास्त्रमय सर्वोपनिषदिक गीता महाशास्त्र के द्वारा,

" ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् " (श्रीमद्भ०७ १८)

ईश्वरार्पितसर्वार्थ ईश्वरात्मा निरामयः।
ईश्वरः सर्वभूतात्मा भव भूपितभूतलः॥ (यो०वा०६।२।५३।१८)

अपने आत्मस्वरूप अतिशय प्रेमास्पद भवभुवण सर्वात्मा गुणातीत ज्ञानी पुरुष का यशोगान करते हुए कह रहे हैं कि,

"प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ "

(श्रीमद्भ० १४।२२-२५)

वह मद्रूप जीवन्मुक्त गुणातीत पुरुष बुद्धि के धर्म प्रकाश–सत्वगुण के उत्कर्ष अर्थात बुद्धि के ज्ञान, वैराग्य एवं समाधि आदि से सम्पन्न होने पर; प्रवृत्ति—रजोगुण के कार्य युद्धादि हिंसात्मक कार्योन्मुख होने पर एवं मोह—तमोगुण के कार्य निद्रा, आलस्य आदि के प्राप्त होने पर, इनसे राग-द्वेष को प्राप्त नहीं होता; सदैव सूर्यवत् गुणान्वित समस्त जड़ बुद्धि वृत्तियों को प्रकाशित करता हुआ, उदासीनवत् अपने साक्षित्व में स्थित रहता है; कभी भी गुणों से विचलित नहीं होता यानी कभी भी इनसे संश्लिष्ट नहीं होता, सर्वदा अपने अकर्तृत्व में ही स्थित रहता है। इसीलिए वह सर्वात्मदर्शी निरारम्भ स्वरूपस्थ गुणातीत पुरुष सुख-दुःख मिट्टी स्वर्ण, प्रिय–अप्रिय, निन्दा-स्तुति, मान–अपमान, शत्रु-मित्रादिक समस्त सांसारिक द्वन्द्वों में सम रहता है, वह कहलाता

"पुरुषस्य कर्तृत्व भोक्तृत्व सुखदुःखादिलक्षणश्चित्त धर्मः
क्लेश रूपत्वाद्बन्धो भवति । तन्निरोधनं जीवन्मुक्तिः"

(मुक्ति० ३०२।१)

कर्तृत्व भोक्तृत्वादि बंधनात्मक चित्त-धर्म की अहंकृति से मुक्त निर्लिप्त, समत्व बुद्धि सम्पन्न महावर्ती सर्वात्मदर्शी जीवन्मुक्त पुरुष—

"यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥"(श्रीमद्भ०१८।१७)

त्रैलोक्य का हनन करने पर भी न हनन क्रिया का कर्त्ता बनता है, न उसके पाप से ही बद्ध होता है; क्योंकि उसने

" उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते " (तै०उ०२।९)
" न लिप्यते कर्मणा पापकेन " (बृ०उ०४।४।२३)
" नैनं कृताकृते तपतः " (बृ०उ०४।४।२२)

पाप-पुण्य दोनों को निर्विकार आत्मरूपेण ग्रहण किया है। इसी कारण सर्वसमर्थ निरहम् निर्विकार उन्मन्यवस्थापन्न आत्मदर्शी,

"मनः कर्माणि जायन्ते मनो लिप्यति पातकैः ।
मनश्चेदुन्मनी भूयान्न पुण्यं न च पातकम् ॥"(यो०शि०उ०६।६१)
"सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते " (श्रीमद्भ०६।३१)

सब प्रकार के पाप-पुण्य विधि-निषेधात्मक व्यापार करता हुआ भी "सर्वं ब्रह्म" की बुद्धि से ब्रह्मार्पणाचारसम्पन्न ब्रह्मविद्वरिष्ठ ब्रह्मभूत ब्रह्म में ही ब्रह्मात्मक कर्मों को ब्रह्मार्पित करता है। इसलिए वह

" न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्व समाविष्टो मेधावी छिन्न संशयः ॥"
(श्रीमद्भ०१८।१०)

सत्त्व समाविष्ट छिन्नसंशय ब्रह्मानुभव सम्पन्न परावरैकत्वदर्शी मेधावी जीवन्मुक्त

महात्यागी समदर्शी पुरुष अकुशल–अशुभ–राग; कुशल–शुभ–पुण्य कर्म में राग–द्वेष को नहीं प्राप्त होता अर्थात् उसमें उसकी हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती कि यह शुभ–श्रेष्ठकर्म शुभगति का हेतु है, अतः करणीय है और यह अशुभ–पापकर्म अशुभगति का हेतु है, इसलिए अकरणीय है—ऐसी बुद्धि नहीं होती; क्यों कि दोनों मिथ्या या ब्रह्मरूप हैं, अतः दोनों में वह अज अमरात्मा

" पण्डिताः समदर्शिनः " (श्रीमद्भ०५।१८)

" समत्वं योग उच्यते " (श्रीमद्भ०२।४८)

इस गीतोक्त भगवद्वचनानुसार, समत्वरूप योग-महासमाधि से ही सदा युक्त रहता कभी भी विषम गुणों से गुणान्वित–विषमात्मक विषमदेह बुद्धि रूप विषमता को नहीं प्राप्त होता। दूसरे, पाप–पुण्य, धर्माधर्म, मानापमान, निन्दा–स्तुति, सत्यासत्य, समस्त द्वन्द्वात्मक प्रपंच का

"येनरूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ॥" (क०उ०२।१।३)

निष्प्रपंच ब्रह्मतत्त्व ही प्रकाशक उसका पारमार्थिक रूप है। अतः महात्मा द्वन्द्वात्मक जगत् के सारभूत पारमार्थिक तत्त्व परमात्मा को ही सदैव देखता है, वाचारम्भण–मिथ्या नामरूपात्मक प्रपंच को नहीं

" आकाशो वै नाम रूपयोर्निर्वहिता ते
यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा ।" (छा०उ०८।१४)

वह आकाशस्वरूप निर्गुण निर्विशेष सर्वगत ब्रह्मामृतात्मा ही नामरूपात्मक दृश्य प्रपंच को सत्ता स्फूर्ति देने वाला, उसका निर्वाहक एवं प्रकाशक है। अतः उससे भिन्न जगत् नाम की कोई वस्तु नहीं है। सर्वत्र वह अज, अद्वय, अव्यय ब्रह्मसत्ता

ही स्थित है। इसी कारण से जो महात्मा इस अद्वैतवाद को समझ लेता अर्थात् अपने को,

" वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥", (श्रीमद्भ०२ २२)

ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा अज, अद्वय, अव्यय, अविनाशी एवं नित्य निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निर्विशेष समझ लेता है, वह द्वैतजात जगत का बाधक ब्रह्म-दर्शी अद्वैतनिष्ठ निरहं निरिन्द्रिय पुरुष कैसे कर्तृत्वबुद्धि से सम्पन्न हो किसी को मारेगा ? और कोई मरेगा ? क्यों कि जो देहाध्यासाभिनिवेश से मुक्त सर्वात्म दर्शी पुरुष,

" दृष्टिरेव सृष्टिः ",

की दृष्टि से, अपने को पूर्ण, अज, निराकार, निर्विकार, मुक्त, ब्रह्म, शान्त, सुखी, आत्मारामी, स्वाराज्यलब्ध, महान्, एवं ज्ञानी समझता है, वह समस्त ब्रह्माण्ड को पूर्ण, अज, निराकार, निर्विकार, मुक्त, ब्रह्म, शान्त, सुखी, आत्मा-रामी, स्वाराज्यलब्ध, महान् एवं ज्ञानी समझता है; क्योंकि

" सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्नात्मयाजी वै स्वाराज्यमधि गच्छति ॥" (म०स्मृ०)
" आप्नोति स्वाराज्यम् " (तै०उ०१।६।२)

वह स्वाराज्यारूढ़ समस्त भूत प्राणियों का आत्मा है और सब भूतप्राणी उसके अर्थात् ब्रह्मा से कीट पर्यन्त वह सबका आत्मा है यानी सबका रूप है और सब उसके । इसलिए कि वह प्रपंचाध्यासाधिष्ठान सर्वात्मा है, सबको सत्तास्फूर्ति प्रदान करने वाला विश्वात्मा है । इसीलिए वह ब्रह्मविद्वरिष्ठ सर्वात्मदर्शी

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥" (श्रीमद्० ६।३२)

स्वात्मसादृश्य सबके सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझता । इस प्रकार वह महायोगी इस महानुभूति से सम्पन्न हो,

"सर्ववेदान्तसिद्धान्तं सर्वशास्त्रार्थं निर्णयम् ।
अनेक जीव त्वद्भावमेक बोधादि निर्णयम् ॥" (ते०बि०उ०५।८४)

एक में अनेक और अनेक में एक का खेल खेलता हुआ कभी भी अपने अद्वय भूमाक्षर-प्रतिष्ठा से च्युत नहीं होता जैसे स्वर्ण नाना भूषणों का रूप धारण करने पर भी अपने पारमार्थिक स्वर्ण-रूप से च्युत नहीं होता । वह जड़ देहाध्यास से मुक्त चैतन्य पुरुष स्वयं चैतन्य होने के कारण समस्त विश्व को चैतन्य बना चुका है आनन्द होने के कारण आनन्द मूर्ति एवं सच्चिदानन्द होकर सबको सच्चिदानन्द प्रमझ लिया है । इसीलिए वह सच्चिदानन्द के महोत्सव में सदैव मग्न रहता और सच्चिदानन्द को हो,

" दृष्टिं ज्ञानमयी कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् " (ते०बि०उ०१ २६)

ज्ञानमय दृष्टि से, तन में, मन में, वदन मे, रग-रग में, रोम-रोम में, आंख में, कान में, नाक में, मुख में, सिर में, पैर में, हाथ में, पेट में, पीठ में, बुद्धि में, चित्त में, अहं में, प्राण में सर्वत्र देखता अथवा सबको सच्चिदानन्द स्वरूप ही समझता कि उस अनंतानंत नाम रूपधारी के तन, मन, वदन, आंख, कान, नाक मुख, हाथ, पैर, पीठ, बुद्धि, चित्त, अहं, प्राण आदि उसी के नाम और रूप है,

"यद्वन्मृण्मयः कुम्भः तद्वद् देहोऽपि चिन्मयः" (यो०शि०उ०४।२१)

इस श्रुतिमन्त्रानुसार, जैसे कुम्भ मृण्मय है, वैसे ही देह भी चिन्मय — ब्रह्मरूप है । [illegible] मूर्ति भूमानन्द दशा को स्वतन्त्र स्वसं–

वेद अनुभूति — हृदय का दिव्य उद्गार है, अमर उपदेश ब्रह्म-सामगान है, उसका चिद्विलास, महाऐश्वर्य एवं महायोग है, जो वेदान्त के अन्वय-व्यतीरेक-दृष्टि में अन्वित और उसका प्रकाशक,

"निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते" (अ०ए०३०३२)

वाणी एवं बुद्धि के परे, केवल अनुभवगम्य केवल अनिर्वचनीय, केवल केवला-नुभव, केवलकेवलानन्द, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, रसघन, अनन्य, शाश्वत् भूमा सुख है, जिसके लिए ब्रह्मादि देवगण भी लालायित रहते। सचमुच, यही जीवों की आत्यन्तिक हित की स्थिति है और यहीं पर सबका हित सम्पादन होता, यहीं पर समस्त ब्रह्माण्ड से एकता और मैत्री होती। यहीं पर आत्य-न्तिक सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। इसी अनुभूति पर उस,

" मय्यखण्ड सुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते माया मारुत विभ्रमात्॥" (कु०३०१४)

अखण्ड सुख सुधासिन्धु रूप महात्मा में अनेकानेक विश्ववीचियाँ उत्पन्न हो-होकर लीन होती रहती।

"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" (य०सं०३१।३)
(तै०आ०३।१२)

उस अनन्त के एक पाद में विश्व की स्थिति है, उसका त्रिपाद निस्तरङ्ग अमृत स्वरूप है। जैसे सागर तरंगों को अपनी कुक्षि-गोदी में धारण करता है, वैसे ही महात्मा समस्त ब्रह्माण्ड को अपने अंक-गोदी में धारण किए बैठा है।

"ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः" (आ०प्र०३०१४)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, सब उसकी गोदी के बच्चे हैं। यहाँ तक कि अनन्त अनन्त चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, कुबेरादि

लालन-पालन, सत्तास्फूर्ति एवं अधिकार को प्राप्तकर रहे हैं। इस प्रकार इस महान् वैभवानुभूति एवं महत्ता को प्राप्तकर महात्मा अपनी महिमा में नहीं समाता, समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त—परिपूर्ण सबका पूज्य, सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ बन जाता। इसीलिए भगवान् अपने से ज्येष्ठ एवं पूज्य महापुरुष की महत्ता के प्रति कहते हैं कि:—

" निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥(श्रीमद्भा०११।१४।१६)

मैं उस परमपूज्य परमाराध्य, निरपेक्ष, समस्त कामनाओं के कलंक से मुक्त शिवस्वरूप शान्त, निर्वैर, समदर्शी, विश्वात्मा के चरणरज को अपने को पवित्र करने के लिए सिर पर चढ़ाता हूँ। जैसे सागर अपने सागर-जलदृष्टि से तरंगों को नहीं देखता, उसका अभाव देखता है, वैसे ही महात्मा अपने स्वरूप दृष्टि से ब्रह्माण्ड का अभाव देखता है। अथवा, जैसे सागर ही तरंगाकार होकर भासता है, वैसे ही महात्मा ही जगदाकार होकर भासता है, अतः इस अन्वय-व्यतिरेक दृष्टि से, उस महापुरुष से भिन्न अणुमात्र भी कोई वस्तु नहीं है।

" ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् " (श्रीमद्भ०७।१८)

की दृष्टि से, आत्मा बने हुए उस महाज्ञानी महात्मा कृष्ण की ही यह महावाणी है कि,

" मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति ", (श्रीमद्भ०७।७)

मुझसे भिन्न अणुमात्र भी नहीं है। अथवा, महात्मा के सर्वात्मा, सर्वरूप होने के कारण सर्वशास्त्र एवं वेदों की वाणी या अन्यों की वाणी उसकी वाणी है, सबकी दृष्टि उसकी दृष्टि है; सबकी मति उसकी मति है, सबकी गति उसकी गति है, सबकी चेष्टा उसकी चेष्टा है, सबकी अनुभूति उसकी अनुभूति है, सबका

व्यापार उसका व्यापार है, सबका देश उसका देश है, सबका नाम उसका नाम है, सबकी वस्तु उसकी वस्तु है, और नहीं किसी की वस्तु उसकी वस्तु है। वह सब में है, परन्तु किसी में भी नहीं है और न कोई उसमें है। वह केवल अचल असंग, निर्मल, निर्विकार स्वरूप है। या

" सर्वं खल्विदं ब्रह्म " (छा०उ०३।१४।१)

की दृष्टि से, सबकी सब गति, मति, दृष्टि, लक्ष्य, निष्ठा, चेष्टा, अनुभूति आदि सब ब्रह्ममूर्ति हैं। अतः पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सबकी वाणी वेद वाणी ही है, किसी में कोई भी विकार नहीं है, सब निर्विकार, निर्दोष, मुक्त परमपवित्र परमात्मरूप हैं। इसीलिए महात्मा गुरु-शिष्यादि काल्पनिक भेद बुद्धि से रहित उपदेश आदि से मूक हो जाता। वह परमाश्चर्यास्पद ब्रह्मभूत-ब्रह्ममूर्ति महापुरुष,

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥"

(श्रीमद्भ० २।६९)

"यत्र सुप्ता जनाः नित्यं प्रबुद्धस्तत्र संयमी।
प्रबुद्धा यत्र ते विद्वन् सुषुप्तिं याति योगिराट्॥" (य.ज्ञ०उ०२२)

योगिराट अप्रबुद्ध असंयमी समस्त प्राणियों का निशा स्थान और प्रबुद्ध संयमी का दिन है यानी संयमी उसमें जागते हैं अर्थात् संयमी उसे ब्रह्मरूपेण विषय करते हैं और असंयमी उसमें सोते हैं अर्थात् उसके ज्ञान से शून्य हैं। आश्चर्य है कि:—

"अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्मतद्विस्मृतं नृणाम्" (म०उ०४।१।२)
"स्वतः सिद्धाद्वयानन्दः स्वयमेव विभाति च" (सू०सं०)

स्वतः सिद्ध ... स्वरूप सर्वात्मा अद्वैत नित्य निरविषयः—

नन्द स्वरूपभूत प्रकाशस्वरूप भूमातत्त्व स्वात्मा के सदा स्वतः प्रकाशित होने पर भी,

"आयासस्तावदत्यल्पः फलं मुक्तिरिहैव तु ।
तथाऽपि परमाद्वैतं नैव वाञ्छन्ति मानवाः ॥" (सू०सं०)

और अनायास ही स्वरूप "सर्वं ब्रह्म" की बुद्धि से साध्य श्रुति, स्मृति, पुराणादि योगियों, देवों, परमेश्वर एवं नारायणादि से भी सर्वमान्य शोकमोह विनाशक शिवस्वरूप परम अद्वैत आत्मा को अविद्यावासनावासितान्तःकरण भ्रान्त-पुरुष पापोदय के कारण ईश्वरानुग्रह के अभाव में इच्छा नहीं करते । वे विपरीतदर्शी,

सदैवात्मा विशुद्धोऽस्मिन्नशुद्धो भाति वै सदा ।
यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम् ॥"
(यो०शि०उ०४।२०-२१)

"उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते ।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते" (आ०प्र०उ०२५)

सदा शुद्ध आत्मा को रज्जु सर्पवत् सदा अशुद्ध देखते है या उलूकवत् प्रकाशस्वरूप ब्रह्मरूपी सूर्य में अन्धकार स्वरूप जगत को देखते हैं ।

" अहो नु चित्रं अविद्यमाना याविद्या तया
विश्वं खिलीकृतम् " (म०उ०४।१३३)

अहो ! कितने आश्चर्य का विषय है कि जो अविद्या है ही नहीं उस अविद्यमान असत् माया के द्वारा,

" भेद दृष्टिरविद्येयम् " (म०उ०५।११३)

स्वप्नसंकल्पारूढ़ अविद्योपासक भेद—द्वैतदर्शी सम्पूर्ण विश्वविमोहित शोकमोहा—

व्यापार उसका व्यापार है, सबका देश उसका देश है, सबका नाम उसका नाम है, सबकी वस्तु उसकी वस्तु है, और नहीं किसी की वस्तु उसकी वस्तु है। वह सब में है, परन्तु किसी में भी नहीं है और न कोई उसमें है। वह केवल अमल असंग, निर्मल, निर्विकार स्वरूप है। या

" सर्वं खल्विदं ब्रह्म " (छा०उ०३।१४।१)

की दृष्टि से, सबकी सब गति, मति, दृष्टि, लक्ष्य, निष्ठा, चेष्टा, अनुभूति आदि सब ब्रह्ममूर्ति हैं। अतः पशु, पक्षी; कीट, पतंग आदि सबकी वाणी वेद वाणी ही है, किसी में कोई भी विकार नहीं है, सब निर्विकार, निर्लेप, मुक्त परमपवित्र परमात्मस्वरूप हैं। इसीलिए महात्मा गुरु-शिष्यादि काल्पनिक भेद बुद्धि से रहित उपदेश आदि से मूक हो जाता। वह परमाश्चर्यास्पद ब्रह्मभूत-ब्रह्ममूर्ति महापुरुष,

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥"

(श्रीमद्भ० २।६९)

"यत्र सुप्ता जनाः नित्यं प्रबुद्धस्तत्र संयमी।
प्रबुद्धा यत्र ते विद्वन् सुषुप्तिं याति योगिराट्॥" (य.ज्ञ०उ०२२)

योगिराट अप्रबुद्ध असंयमी समस्त प्राणियों का निशा स्थान और प्रबुद्ध संयमी का दिन है यानी संयमी उसमें जागते हैं अर्थात् संयमी उस ब्रह्मरूपेण विचरण करते हैं और असंयमी उसमें सोते हैं अर्थात् उसके ज्ञान से शून्य हैं। आश्चर्य है कि:—

"अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्मतद्विस्मृतं नृणाम्" (म०उ०४।१।२)

"स्वत. सिद्धाद्वयानन्दः स्वयमेव विभाति च" (सू०सं०)

स्वतः सिद्ध ... सर्वात्मा अद्वैत नित्य निरतिशयः—

नन्द स्वरूपभूत प्रकाशस्वरूप भूमातत्त्व स्वात्मा के सदा स्वतः प्रकाशित होने पर भी,

"आयासस्तावदल्पल: फलं मुक्तिरिहैव तु ।
तथाऽपि परमाद्वैतं नैव वाञ्छन्ति मानवाः ॥" (सू०सं०)

और अनायास ही स्वल्प "सर्वं ब्रह्म" की बुद्धि से साध्य श्रुति, स्मृति, पुराणादि योगियों, देवों, परमेश्वर एवं नारायणादि से भी सर्वमान्य शोकमोह विनाशक शिवस्वरूप परम अद्वैत आत्मा को अविद्यावासनावासितान्त:करण प्राग्व-पुरुष पापोदय के कारण ईश्वरानुग्रह के अभाव में इच्छा नहीं करते । वे विपरीतदर्शी,

सदैवात्मा विशुद्धोऽस्मिन्नशुद्धोभाति वो सदा ।
यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम् ॥"

(यो०शि०उ०४।२०-२१)

"उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते ।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते" (आ०प्र०उ०२५)

सदा शुद्ध आत्मा को रज्जु सर्पवत् सदा अशुद्ध देखते है या उलूकवत् प्रकाशस्वरूप ब्रह्मरूपी सूर्य में अन्धकार स्वरूप जगत को देखते हैं ।

"अहो नु चित्रं अविद्यमाना याविद्या तया
विश्वं खिलीकृतम्" (म०उ०४।१३३)

अहो ! कितने आश्चर्य का विषय है कि जो अविद्या है ही नहीं उस अविद्यमान असत् माया के द्वारा,

"भेद दृष्टिरविद्यं यम्" (म०उ०४।११३)

स्वप्नसंकल्पारूढ़ अविद्योपासक भेद—द्वैतदर्शी सम्पूर्ण विश्वविमोहित शोकमोहा—

भ्रान्त हो रहा है।

जैसे स्वप्नावस्था की साङ्कल्पिक शरीर मूल शरीर की विस्मृति के कारण स्वाप्निक सृष्टि के सुखदुःखात्मक द्वन्द्वों से आक्रान्त होती है और मूल शरीर के स्मरण से अर्थात् संकल्पाभाव होते ही दुःखों से मुक्त हो जाती है, वैसे ही

"स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पाद्विमुच्यते" (म०उ०२.७०)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, जीव अपने पारमार्थिक सच्चिदानन्दघन मूल शरीर की विस्मृति के कारण संकल्पों से संयुक्त हो, असत् जगत् को सत्य मानकर दुःखी होता है और अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्दघन के स्मरणसे संकल्पों से मुक्त हो, दुःखो से मुक्त हो जाता है, क्योंकि

" नित्य प्राप्तस्य चाप्राप्तिर्विभ्रमः खलुदेहिनाम् ।
विभ्रमस्यनिवृत्त्या वा प्राप्नेति व्यपदिश्यते ।।" (सू०सं०)
"बोधात् पूर्वमपि ब्रह्मपि सर्वो जन्तुः स्वभावतः ।
अब्रह्मत्वमविद्योत्थं विद्यया सन्निवर्तते ।।"

नित्य प्राप्त आत्मतत्त्व की अप्राप्ति जीवों को भ्रम के कारण ही है अतः [पूर्ण से प्राप्त कण्ठाभरणवत् ज्ञान से अज्ञानात्मक] भ्रम की निवृत्ति ही उसकी प्राप्ति है। इसलिए कि जीव स्वभावतः पूर्ण से ही ब्रह्म है। अतः विद्या से अविद्यात्मक अब्रह्मत्व की निवृत्ति ही अभिष्ट है।

अथवा जैसे स्वप्न की सृष्टि सांकल्पिक होने के कारण बिल्कुल निराकार है, परन्तु राग द्वेषात्मक मन के संकल्पों से साकार होकर भासती है और संकल्पाभाव में निराकार हो जाती है क्योंकि जगने पर कोई भी स्वप्न की वस्तु उपलब्ध नहीं होती; वैसे ही यह जाग्रत जगत भी निराकार ही है,

परन्तु रागद्वेषात्मक मनके संकल्पों के कारण साकार होकर भासता है और संकल्पाभाव में निराकार हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि संकल्प से ही निराकार साकार बनता है और संकल्पाभाव से साकार निराकार। संकल्प से ही जीव जगत् बनता है और निःसंकल्पता से ब्रह्म। अतः बन्धन उपस्थित करने वाले समस्त समाधिपर्यन्त सांकल्पिक साधनों को सादर छोड़कर निःसंकल्प स्वरूप ब्रह्म हो जाना चाहिए, क्योंकि निःसंकल्पता को ही ब्रह्म कहते हैं। इसीलिए भगवान्

"न ह्यसंन्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन" (श्रीमद्भ० ६.२)

मुमुक्षुओं के लिए यह दिव्य आदेश देते हुए कह रहे हैं कि हे मुमुक्षुओ ! बिना संकल्पों का त्याग किए कोई भी योगी नहीं हो सकता। यही श्रुति का भी आदेश है—

"केवलमोक्षापेक्षा संकल्पो बन्धः"

" संकल्प मात्रसंभवो बन्धः " (नि०उ०१.४६)

"यस्य संकल्पनाशः स्यात्तस्य मुक्तिः करतले स्थिताः" (श्रुति)

मोक्षापेक्षा आदि समस्त संकल्प बन्धन है। निर्बन्ध निःसंकल्पता ही है। अतः संकल्प शून्य होने का प्रयास करना चाहिए, क्यों कि जितना ही साधना का संकल्प होगा, उतना ही स्वरूपभूत ब्रह्म का आवरण होगा और वह दूरस्थ होता जाएगा तथा जितना संकल्पाभाव होगा, उतना ही आवरण का अभाव और ब्रह्म सन्निकट होगा। अतः मुक्ति की इच्छा का भी त्याग करके मुक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि आत्मा पूर्व से ही शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है। अतः मुक्त आत्मा को मुक्ति की इच्छा ही बन्धन है। इसीलिए श्रुति

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" (छा०उ०३।१४।१)

रूप महामन्त्र से, कह रही है कि सब ब्रह्म है, तू भी ब्रह्म ही है। अतः सर्व संकल्प के त्याग के द्वारा शान्त ब्रह्म स्वरूप हो जा। यही भगवान् भी कह रहे हैं कि हे अर्जुन ! तू

" उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् " (श्रीमद्भ०६।५)

संकल्पों के त्याग के द्वारा अपना उद्धार करले अर्थात् अपने स्वरूप का साक्षात्कार करके कृतकृत्य जीवन्मुक्त हो जा। संकल्पों के द्वारा अपना नाश मत कर यानी स्वरूपावरण करने वाले संकल्पों के सर्जन के द्वारा अपना हनन मत कर अर्थात् सांकल्पिक अविद्यात्मक देहात्म बुद्धि से सम्पन्न हो,

"असुर्या नाम ते लोकाः अन्धेन तमसावृताः" (ई०३०३)

आत्म-अदर्शन के द्वारा आसुरी दुःखप्रद लोकों को मत प्राप्तकर। देखो! मन एवं संकल्प—ये दोनों जड़, दृश्य, विकारी, विनाशी हैं और तू अर्थात् क्षेत्रज्ञ आत्मा चेतन, द्रष्टा, निर्विकार एवं अविनाशी है। अतः तू चैतन्य, जड़ मन एवं संकल्प की उपासना के द्वारा जड़ मत बन, अपितु इनके त्याग के द्वारा अपने चैतन्य स्वरूप में स्थित होकर अपना उद्धार कर ले; क्योंकि नित्य प्राप्त स्वात्मा से भिन्न अन्य कोई प्राप्तव्य इष्ट वस्तु नहीं है, जिसे प्राप्त करनी है। देख ! उद्धार का इससे भिन्न यानी संकल्पों के त्याग से भिन्न अन्य कोई भी साधन नहीं है। जितने भी संकल्पयुक्त साधन हैं, वे सब बन्धनप्रद, परमात्मा से दूर करने वाले, काल्पनिक एवं असत् हैं। इसीलिए श्रुति

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" (के०३०१ ५)

मन के मनन—संकल्प का बहिष्कार करती हुई कह रही है कि जो जड़ मन से मनन नहीं किया जा सकता, अपितु जिस चैतन्य से जड़ मन में मनन करने

की शक्ति आती है, वह मननातीत-संकल्पातीत, सर्व कल्पनाओं के कलंक से निर्मुक्त निष्कलंक निर्विकल्प ब्रह्म है जो कि कभी भी मन के मनन-बुद्धि वृत्ति में आरूढ़ नहीं होता। जिस मनोकल्पित ब्रह्म का मन मनन करता है, वह लोको पास्य देशकालावच्छिन्न वस्तु ब्रह्म नहीं है। जड़ जगत् परिच्छिन्न अब्रह्म मन ही है, उसकी उपासना माया की ही उपासना है।

जैसे स्वप्न के दुःख की निवृत्ति के लिए सांकल्पिक स्वप्न के सहस्त्रों साधन समर्थ नहीं है, वैसे ही बिना प्रबोध-ज्ञान के संकल्पों का त्याग किए सहस्त्रों साधनों से भी संसार के दुःख की निवृत्ति संभव नहीं। जैसे स्वप्न से प्रबुद्ध होने पर स्वप्न के दुःख की निवृत्ति बिना किसी प्रयास के स्वयमेव हो जाती है, वैसे ही ज्ञानोदय से संकल्पाभाव होने के कारण अनायास ही स्वयमेव सर्व दुःखों का अभाव हो जाता है। अतः स्वस्वरूपसाक्षात्कार के द्वारा संकल्पों के त्याग से समग्र हो, सर्वदुःखों से मुक्त हो जाना चाहिए; क्योंकि संसार-शमन का यही एक मात्र सर्वोत्कृष्ट साधन है।

जैसे स्वप्न का एक ही जीव संकल्पवश अनेकरूप धारण कर लेता है, वैसे ही जाग्रत् जगत् का एक ही जीव संकल्प के कारण अनेक रूप धारण कर लेता है। अनुभव में भी यही आता है कि एक अद्वय आत्मा ही स्वप्नावस्था में संकल्पवश नाना चराचर के रूप में उद्भासित होता और सुषुप्ति में पुनः विश्वविवर्जित अपने अद्वयरूप महाभूमा सुख में प्रतिष्ठित हो जाता है। ऐसे ही योगवासिष्ठ एवं श्रुति का भी कथन है कि:-

"उपशान्ते हि संकल्पे उपशान्तमिदं भवेत्।
संसार दुःखमाखिलं मूलादपि महामते॥ (यो॰वा॰स्थि॰ स॰
(प्र॰११९-२१)

संकल्पनादृते नेह किंचिदेवाऽस्ति कुत्रचित् ।"

।"संकल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते " (म०उ०४।५३)

स्वप्नसृष्टिवत् संकल्प के शान्त होते ही संसार के सर्वदुःख समूल शान्त हो जाते हैं, क्योंकि संकल्प से भिन्न सृष्टि हो नहीं है । संकल्प के शेष हो जाने पर केवल स्वरूप ही अवशिष्ट रहता है ।

जैसे स्वप्न, स्वप्न द्रष्टा का दृश्य उसका स्वरूप ही है, वैसे ही जाग्रत् जगत् भी जीव का दृश्य, उसका स्वरूप ही है । अथवा, स्वप्नसृष्टिवत् मनोराज्य होने के कारण मिथ्या है । ऐसे ही सूतसंहिता में पौराणिक महामुनि सूत जी का भी कथन है कि—

"स्वस्वप्नः स्वप्रबोधेन स्वात्ममात्रं यथा भवेत् ।

तथैव स्वप्रबोधोऽपि स्वयं स्यात्स्व प्रबोधतः ॥" (सू०सं०)

जैसे अपना स्वप्न स्वयं अपने जग जाने पर स्वात्मरूप हो जाता है, वैसे ही यह अपना संकल्परचित जगज्जाल भी स्वयं प्रबुद्ध होने पर अपना स्वरूप ही हो जाता है ।

अथवा, जैसे स्वप्नद्रष्टा अपने ही संकल्प से स्वाप्निक दृश्य से आबद्ध होने के कारण दुःखी होता है, वैसे ही

"द्रष्टादृश्यवशाद्बद्धो दृश्याभावे विमुच्यते" (म०उ०४।४८)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, जीव संकल्पवश दृश्यासक्त होने के कारण बद्ध होता है और संकल्पाभाव से दृश्याभाव होने से मुक्त हो जाता है ।

जैसे स्वप्न का जीव ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवों, वेद आदि शास्त्रों, गंगादिक तीर्थों, सूर्य-चन्द्रादि एवं समस्त सृष्टि का स्रष्टा, पाता, संहर्ता बनता है; परन्तु स्वप्नावस्था की तात्कालिक शरीर की अहंमन्यता से अपने मूल स्व-

रूप की विस्मृति के कारण स्वविरचित देवों, तीर्थों, सूर्य एवं वेदों की उपासना करता है और जाग्रदवस्था में संकल्पाभाव-स्वरूपस्थ होने पर उनकी दासता से मुक्त हो जाता है, वैसे ही आत्मा अनन्तानन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि का स्रष्टा, पाता, संहर्ता है; परन्तु महान् आश्चर्य है कि संकल्पवश मिथ्या देहाभिनिवेश से स्वरूप की विस्मृति के कारण स्वनिर्मित इन जड़ देवों, वेदों एवं तीर्थों की उपासना करता। वस्तुतः तो वह सर्ववन्द्य, सर्वश्रेष्ठ, सर्वसमर्थ, सर्वविलक्षण, सर्वसाक्षी चैतन्य ब्रह्म ही है और नानारूप स्वाप्न जड़ दृश्य है। बस, इतना सा वेदान्त एवं ज्ञान है और सब शास्त्रों का आडम्बर--अज्ञानमात्र है। इस दृष्टि से विद्वान्—अविद्वान्, अद्वैती, द्वैती, शैवी, साकारी, निराकारी, आस्तिक, नास्तिक, धर्मी, अधर्मी सब स्वप्नावस्था में इसका सर्वदा अनुभव करते हैं। फिर ऐसे स्वानुभूत वेदान्त सिद्धान्त के लिए विवाद एवं वेद क्या करेगा ? यह तो निर्विवाद स्वतः सिद्ध सबका स्वानुभव है। इस प्रकार सर्वानुभव सम्पन्न स्वात्मा के अपलाप करने में कोई भी समर्थ नहीं है; क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है। उस स्वतः सिद्ध स्वयं प्रमाणभूत अप्रमेय आत्मा के लिए वेदादि किसी भी प्रमाण की अपेक्षा नहीं है; क्यों कि जड़ वेदों का प्रामाण्य भी स्वतः सिद्ध प्रमाणभूत चैतन्य आत्मा के प्रमाण—आधार के कारण ही है। अतः सर्वाधार आत्मा का बहिष्कार करने में कोई भी सक्षम नहीं; क्योंकि वह समस्त शंकाओं एवं तर्कों का भी आधार है, उसके अभाव में तर्क संभव ही नहीं। तर्क ही उसकी सत्ता में प्रमाण है। इसीलिए

"येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्।
विज्ञातारमरे केन विजानीयात्।" (बृ०उ०२।४।१४)

अर्थात् जिसके द्वारा सर्वाधार चैतन्य ज्ञानस्वरूप आत्मा को बुद्धि

आदि अचेतन जड़ कार्यवर्ग के द्वारा जानने का निषेध करती है। यही वेदान्त का अन्तिम सिद्धान्त है, क्योंकि इसी की उपस्थिति में विश्व के सब के सब व्यापार सम्पन्न होते हैं। अथवा, जैसे स्वप्न की सांकल्पिक शरीर ही जन्मती-मरती है, मूल शरीर जो शय्या पर पड़ी है, वह नहीं, वैसे ही जाग्रत्-जगत् में भी यह सांकल्पिक भौतिक शरीर ही जन्मती एवं मरती है, मूल शरीर जो अमर आत्मा है वह नहीं। ऐसे ही कहा भी है कि—

"यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च।

तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च।।" (मा०का०)

जैसे स्वप्नावस्था में जीव का जन्मना-मरना संकल्प के कारण ही सत्य भासता है, संकल्पाभाव होने अर्थात् जागने पर मिथ्या हो जाता है, वैसे ही जाग्रत् जगत् में भी जीवों का जन्मना-मरना संकल्प के कारण ही सत्य भासता है, संकल्पाभाव होने अर्थात् ज्ञानोदय होने से असत् हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि संकल्प ही बन्धन-दुःख है और निसंकल्पता ही मोक्ष है। संकल्प ही सृष्टि है और निःसंकल्प तत्व ही ब्रह्म है।

स्वप्न के ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक समस्त सृष्टि का स्रष्टा-विधाता मन ही है, क्योंकि मन से ही इनकी सृष्टि होती है। अतः इनकी उपासना जड़ मन की ही उपासना है, चैतन्य ब्रह्म की नहीं। इसीलिए श्रुति,

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।" (के०उ०१।५)

मायिक मन की उपासना का निषेध करती है।

जैसे स्वप्नावस्था में सांकल्पिक कन्या की प्रथम सृष्टि अकारण ही होती है, उसका कारण उसकी माता आदि नहीं होती, वैसे ही यह सांकल्पिक

सृष्टि अकारण ही सृष्ट हुई है, अतएव मिथ्या है।

जैसे स्वप्नावस्था के कण्ठस्थ बाल से भी सूक्ष्म 'हिता' नामक नाड़ी में विशाल पहाड़, सूर्य-चन्द्रादि एवं पृथ्वी की सृष्टि सम्भव नहीं। क्षण में युगों का समाना संभव नहीं। क्षण मात्र में दूरस्थ देश का गमनागमन संभव नहीं, वैसे ही

"निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः" (अ०उ०२२)

इस श्रुति मन्त्रानुसार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्विकार निराकार निर्विशेष अद्वय ब्रह्म-तत्त्व में सृष्टि सम्भव नहीं।

"अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहार क्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधितः॥
स्वप्ने जागरितं नास्ति जागरे स्वप्नता न हि।
द्वयमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्यनयोर्न च॥
त्रयमेव भवेन्मिथ्या गुणत्रय विनिर्मितम्।
अस्यद्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येषचिदात्मकः॥"
(यो०शि०उ०४।१०-१२)

यह जगत् अनुभूत व्यवहार के योग्य होने पर भी पारमार्थिक दृष्टि से स्वप्नवत् मिथ्या है। स्वप्न में जाग्रत् नहीं है, जाग्रदवस्था में स्वप्न नहीं है और जाग्रत्-स्वप्न सुषुप्ति में नहीं है तथा सुषुप्ति जाग्रत-स्वप्न में नहीं है, अतः ये तीनों त्रिगुण विनिर्मित जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ मिथ्या है।

"यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिः शुक्तौ हि रजतस्थितिः।
तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं वीक्ष्यमाणे विनश्यति॥
यथामृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीव शब्दस्तथा परे॥

यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले ।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि ॥"

(यो०शि०उ०३।१३-१५)

जैसे मृत्तिका में घट की भ्रान्ति है अर्थात् मृत्तिका में घट नहीं है और शुक्ति में रजत नहीं है, वैसे ही ज्ञान दृष्टि से ब्रह्म में जीव नहीं है। जैसे मृत्तिका में घट, कनक में कुण्डल एवं शुक्ति में रजत नाम की कोई वस्तु नहीं है, वैसे ही पर तत्व परमात्मा में जीव नाम की कोई वस्तु नहीं है। जैसे आकाश में नीलत्व, मरुस्थल में जल; स्थाणु में पुरुष का सर्वथा अभाव है, वैसे ही चिदात्मा ब्रह्म में विश्व का नितान्त अभाव है।

यथैव शून्यो वेतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा।
यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः ॥
यथा जलकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम् ।
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः ॥
जगन्नाम्ना चिदा भाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।
"गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात् ।
वीक्ष्यमाणे प्रपंचे तु ब्रह्मैवाभाति भासुरम् ॥
यथैव मृण्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः ।
आत्मानात्मविवेकोऽयं मुधैव क्रियते बुधैः ॥"

(यो०शि०उ०४।१६-२२)

जैसे शून्य वेताल, गन्धर्वनगर एवं आकाश में दो चन्द्रमा मिथ्या है, वैसे ही सत्य तत्व ब्रह्म में जगत मिथ्या है। जैसे ... आभास है, पृथ्वी घट नाम से

एवं तन्तु पट नाम से भासता है, वैसे ही जगत् नाम से केवल चिदात्म ब्रह्म सत्ता ही भास रही है। जैसे घट के ग्रहण मात्र से बलात् मृत्तिका का मान–दर्शन हो जाता है, वैसे ही प्रपंच के दर्शन से प्रपंचाध्यासाधिष्ठान ब्रह्म का बलात् दर्शन हो जाता है। जैसे घट मृत्तिकामय है, वैसे ही "सर्वं ब्रह्म" की दृष्टि से यह देह भी चिन्मय—ब्रह्म ही है। अतः अज्ञों के द्वारा आत्मा–अनात्मा का भेद विचार व्यर्थ ही किया जाता है।

"सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथाऽऽत्मता॥
"घटत्वेन यथा पृथ्वी जलत्वेन मरीचिका।
गृहत्वेन हि काष्ठानि खड्गत्वेनैव लोहता॥"
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः" (यो॰शि३०४।२३-२४)

जैसे विमूढ—भ्रान्त पुरुष रज्जु को सर्परूपेण, शुक्ति को रजतरूपेण काष्ठ को गृहरूपेण, लोह को खड्गरूपेण देखता है, वैसे ही जीव अज्ञान के कारण सदात्मा में दुःख के हेतुभूत असत् शरीर को देखता है। यह जीव का सामान्य स्वभाव है कि वह सत्य को ग्रहण करता है और असत् का त्याग करता है। इसीलिए श्रुति माता स्वपुत्रवत् असत्सक्त दुःखाक्रान्त जीवों के कल्याणार्थ सत्योपदेश देती है कि—

"यथा माता स्वपुत्रस्य सत्यमेवाभिभाषते।
तथा सर्वजनस्यापि सत्यं वदति हि श्रुतिः॥
सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम्।
असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम्॥
अतः संसारनाशाय कदाचित परमा श्रुतिः।

जगत्सर्वमिदं न या यदत्यत्यन्त निर्मला ।।"

" आत्मनोऽन्यस्य सर्वस्य यदनित्यत्व वेदनम् ।
तद्धि संसारवैराग्यजनकं नापरं द्विजाः ।।
रागेणैव हि संसार महादुःखं तु देहिनाम् ।
विरक्तस्य न रागोऽस्ति ततो वैराग्यतः सुखम् ।।
तस्माद्वैराग्यलाभाय चराचरमिदं जगत् ।
अनित्यमिति जानीयात्त्वनात्मानमशेषतः ।।" (सू०सं०)

जगत् के सत्यत्व की बुद्धि संसार के प्रवृत्ति का हेतु होती है और असत् बुद्धि उसके निवृत्ति का हेतु बनती है । अतः परम प्रमाणभूता अत्यन्त निर्मला श्रुति भगवती नित्यानन्द के प्राप्त्यर्थ इस चराचरात्मक सम्पूर्ण अनात्म जगत् को माया, अनित्य, एवं असत् कहती हैं कि:--

" प्रतिभासत एवेदं न जगत्परमार्थतः" (म०उ०५।१०८)

" इदं प्रपंचं नास्त्येव नोत्पन्नं नोस्थितं क्वचित् " (ते०बि०उ०५।३१)

"यथा वन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्ति मरौ जलम् ।
यथा नास्ति नभो वृक्षस्तथा नास्ति जगत्स्थितिः ।। (यो०शि०उ०४.१८-१९)

"अहंकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि " (ते०बि०उ०)

"ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं मृषामात्रा उपाधयः " (अ०उ०१८)

"रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्म सृष्टेस्तु कारणम् ।
संहारे रुद्र इत्येव सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ।।" (ते०बि०उ०५।५१-५३)

"ब्रह्माकारमनोवृत्ति प्रवाहोऽहंकृति विना।
सम्प्रज्ञातसमाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥"
प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददायकम्।
असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः ॥" (मुक्ति० उ० २।५३-५४)
"दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे।
रतिर्बलोदिता याऽसौ समाधिरभिधीयते ॥" (म० उ० ४।६२)
"दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्।
सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परानिर्वाणनिर्वृतिः ॥" (म० उ० २।३८)
"तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यभिधीयते।" (अन्न० उ० ३।५६)
"एष एव मनो नाशस्त्वविद्यानाश एव च ॥" (म० उ० ४।११०)

यह जगत् मृग जलवत् केवल प्रतीतिमात्र है, वस्तुतः है नहीं। यह रज्जुसर्पवत् है नहीं, न उत्पन्न हुआ है और न कहीं स्थित ही है। जैसे बन्ध्यापुत्र नहीं है, मरुभूमि में जल नहीं है, नभ में वृक्षाभाव है, वैसे ही आत्मा में जगत् नहीं है। ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड मिथ्या, उपाधिमात्र है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब मिथ्या हैं—इस प्रकार के दृश्य प्रपंच के मिथ्यात्व निश्चय के द्वारा ध्यानाभ्यास के प्रकर्ष से धारावाहिक ब्रह्माकार मनोवृत्ति के द्वारा अहंकाराभाव में ज्ञाता, ज्ञेय का भेद ज्ञान होने पर भी अज्ञानावरणनाशक "अहं ब्रह्मास्मि" इस अखण्ड चैतन्याकाराकारित चित्तवृत्ति की स्थिति ही जीवन्मुक्तानन्दप्रदायिनी प्रथम संप्रज्ञात–सविकल्प समाधि है। इस सविकल्पावस्था में स्वर्ण के कुण्डलवत् कुण्डल का भान होने पर भी मूल स्वर्ण की बुद्धि बनी रहती है, वैसे ही बाधितानुवृत्ति से द्वैत का भान होने पर भी अद्वैत वस्तु ब्रह्म भासता रहता है। ऐसे ही श्रुति का भी कथन है कि:—

'दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं
सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं
तदेव चाहं सकलं विमुक्त ॐ ॥" (मुक्ति० उ० २।७३)

साक्षी स्वरूप, आकाशवत् व्याप्त, नित्य प्रकाशस्वरूप, अज, एक, अक्षर, निर्लेप, सर्वगत, अद्वय, मुक्तस्वरूप, कार्यकारणातीत, नित्यानन्दस्वरूप, परब्रह्म 'ॐ' मैं ही हूं । इसीलिए जीवन्मुक्त महात्मा ब्रह्मविवेचन एवं मनन काल में जगदाकारवृत्तिविलापिनी ब्रह्माकारवृत्ति से ज्यों ही युक्त होता है त्यों ही आनन्दमग्न, तन्मय-तद्रूप हो जाता है । इस रूप से इस संप्रज्ञातसमाधि के पश्चात् लय, विक्षेप, कषाय, रसास्वाद आदि दोषों से रहित परमानन्दप्रदायिनी चित्तवृत्ति की प्रशान्तावस्था को अर्थात्

"वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते" (ते० बि० उ० १।३७)

ब्रह्माकारवृत्ति की सम्यक् विस्मृति को असंप्रज्ञात निर्विकल्प समाधि कहते हैं । इस प्रकार सुषुप्ति में वृत्ति का अभाव एवं समाधि में वृत्ति का भाव रहता है । वह ब्रह्माकारवृत्ति जीवचैतन्यगत अज्ञानावरण को नष्ट करके उसी प्रकार शान्त हो जाती है, जैसे अग्नि अरणि को भस्म करके स्वयमेव शान्त हो जाती है । उस अवस्था में यद्यपि जल में लवण की भांति अद्वैत तत्त्व में तन्मयता होने के कारण उसकी पृथक् प्रतीति नहीं होती; परन्तु फिर भी जल के लवणवत् वृत्ति वहाँ रहती है । जिस प्रकार जल में लवण पूर्णरूपेण घुल जाने के कारण पृथक् प्रतीत नहीं होता, प्रत्युत जलमात्र ही अवभासित होता है, उसी प्रकार अद्वितीय वस्त्वाकाराकारित चित्तवृत्ति का पृथक् अवभास नहीं होता; अद्वितीय चिन्मात्र तत्त्व का ही भान होता है । ऐसे ही श्रुति का भी कथन

है कि:—

"सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥" (सौ०ल०उ०१४)

इस प्रकार वृत्तिविस्मारक दृश्यप्रपंच का आत्यन्तिक अभाव होने से बन्धन के हेतुभूत, जीवत्वभाव के पोषक राग-द्वेष का अभाव हो जाने के कारण जो नित्यानन्द ब्रह्म के प्रति आत्यन्तिक प्रौढ़ रति उत्पन्न होती है, उसे ही समाधि कहते है। स्वानुभूति के रसावेश से रसोन्मत्त सर्वात्मदर्शनसम्पन्न दृश्य-शब्द की उपेक्षा से निरतिशयानन्दाभिलाषी मुमुक्षुओं के हृदयदेश में वायुशून्य प्रदेश में स्थित दीपक की भांति अविचल निर्विकल्प समाधि होती है। दृश्यप्रपंच के अभाव का बोध होने पर मन का दृश्य से परिमार्जन-परिशुद्धि हो जाती है और परिशुद्धि की सिद्धि हो जाने पर निर्वाणरूपा पराशान्ति की प्राप्ति होती है; क्योंकि मनोनाश ही अविद्या-माया का नाश है। इसलिए कि,

"संकल्पनं मनो विद्धि" (म०उ०४।५२)

"इच्छामात्रमविद्येयम्" (म०उ०४।११६)

संकल्प को ही मन कहते हैं और इच्छा-संकल्प ही अविद्या-माया है। अतः संकल्प ही मन एवं अविद्या है। इस प्रकार

"मन एव जगत्" (तै०बि०उ०५।९८)

जब मनोरचित दृश्यप्रपंच का परिमार्जन-दृश्याभाव होने के कारण अथवा

स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नश्यति योगिनः।
युक्त्या भक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सर्वात्म्यमात्मनः ॥ (अ०उ०४)

स्वात्म-सर्वात्मत्व परिज्ञान के द्वारा विश्वाकाराकारित मन का अभाव-मनोनाश हो जाता।

"यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः।
न क्षीणावासना यावच्चित्तं तावन्नशाम्यति॥
यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः।
यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनम्॥
यावन्नवासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः।
यावन्न तत्त्वसंप्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः॥" (अन्न० उ० ४।७८-८०)

तब जीवन्मुक्ति प्रदान करने वाली वासना क्षय हो जाती और वासना क्षय होने से चित्त शान्त हो जाता, चित्त के शान्त होते ही सर्वानर्थनिवर्तक नित्यानन्दपद ब्रह्म प्राप्त हो जाता, जिससे जीव शोक-मोह से सदा के लिए मुक्त, स्वाराज्य पर अभिषिक्त, सार्वभौम सम्राट हो जाता। अतः मुमुक्षुओं को मुक्त्यर्थ वासना के शमन के लिए,

"असंगव्यवहारत्वाद्भवभावनवर्जनात्।
शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्तते॥" (मुक्ति० उ० २.२८)

अनासक्त-अकर्तृत्व बुद्धिसम्पन्न व्यवहार से, भव की भावना से मुक्त हो अर्थात्

सर्वत्र सर्वतः सर्वं ब्रह्ममात्रावलोकनम्।
सद्भावभावना दार्ढ्याद्वासना लयमश्नुते॥ (अ० उ० १३)

इस श्रुति मन्त्रानुसार सर्वत्रब्रह्म बुद्धि से सम्पन्न एवं दुःखस्वरूप अशाश्वत शरीर के नाश के दर्शन से युक्त हो,

"वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्" (मुक्ति० उ० २।२८)

अचित्तता—अमनी--भाह्मी अवस्था को प्राप्त हो जाना चाहिए। क्यों कि

'वासनाक्षय विज्ञान मनोनाशा महामते ।

समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदामता: ॥" (अन्न०उ०३।८३)

मनोनाश, वासनाक्षय, तत्त्वविज्ञान समकालीन—एक काल में चिरकाल तक अभ्यस्त होने से मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। इसलिए कि,

"बद्धो हि वासना बद्धो मोक्ष: स्याद्वासना क्षयः ।

वासना संपरित्यज्य मोक्षार्थित्वमपि त्यज ॥" (मुक्ति०उ०२।६८)

"सर्वत्र सर्वतः सर्वं ब्रह्ममात्रावलोकनम् ।

सद्भावभावनादार्ढ्याद्वासनालयमश्नुते ॥" (म०उ०१२)

वासना-बद्ध ही बन्धन है एवं वासना क्षय ही मोक्ष है।

"लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयाऽपि च ।

देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥" (मुक्ति०उ०२।२)

"पदार्थभावना दार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते" (श्रुति)

अतएव बन्धनात्मक पदार्थाकार बुद्धि से युक्त सर्वत्र ब्रह्मदर्शन सम्पन्न हो, मोक्ष के प्रतिबन्धक वासनाओं का निःशेषतः त्याग कर देना चाहिए। क्यों कि

"तत्त्वावबोध एवासौ वासना तृणपावकः ।

प्रोक्तः समाधि शब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः ॥" (म०उ०४।१२)

वासनाओं का दग्धीकरण ही समाधि है, स्थाणुवत् चुपचाप बैठना नहीं। अतः

"बोधः साम्यं समदति पुराणयग्राणि तत्र च ।

शिवं चिन्मात्रममलं पूर्णं पुत्र विदोविदुः ॥"

(यो०वा०नि०प्र०२१।१२७)

बोध, साम्य, शम—इन तीन महाप्रसून रूपी साधनों को स्वरूपभूत महदेव पर चढ़ाकर अर्थात इन साधनों से सम्पन्न हों,

"अहं ब्रह्मेति चेद्वेद साक्षात्कारः स उच्यते" (१०३०२ ४१)

मैं ब्रह्म हूं। इस साक्षात्कारात्मक बुद्धि के द्वारा जीवत्वभाव से मुक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि

"नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्न जायते" (पैं०उ०४ २१)

"नाहं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदृढाद्बध्यते मनः।

सर्वं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदृढान्मुच्यते मनः॥" (म०उ ४।१२४)

"अहं ब्रह्मेति नियतं मोक्ष हेतुर्महात्मनाम्" (म०उ ४।७२)

जो अपने ब्रह्मत्व को नहीं जानता, उसकी मुक्ति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं अर्थात् अपने को ब्रह्म न मानकर जीव मानना ही बन्धन है क्योंकि

"स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्म परमात्मनोः।

यस्तिष्ठति विमूढात्मा भयं तस्यापि भाषितम्॥"

(यो०शि० ३०४ ८)

इस श्रुति मन्त्रानुसार, जो मूर्ख जीवात्मा एवं परमात्मा में लेशमात्र भी अन्तर मानता है, उसे जन्म-मृत्यु का भय उपस्थित होता है। अतः इन दोनों का भेद मान्य नहीं है। इसलिए कि

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।

कार्यकारणतां हित्वा पूर्णो बोधोऽवशिष्यते॥" (शु०र०उ०३।१२)

जीव-ईश्वर का काल्पनिक भेद जलाशय एवं दारायगत सूर्यप्रतिबिम्बवत कार्य-कारण की मिथ्या उपाधि के कारण ही है, वस्तुतः सामान्य चैतन्य-दृष्टि से लेशमात्र भी अन्तर नहीं है वह बिम्बस्वरूप परमात्मा ही अविद्यात्मिका माया

में ईश्वर रूप से प्रतिबिम्बित हो रहा है और अवच्छिन्न अन्तःकरण में जीव रूप से प्रतिबिम्बित हो रहा है। अतएव पूर्णबोधोपलब्धि के लिए कार्य–कारण उपाधिकृत जीव-ईश्वर भेद बुद्धि को त्याग कर

" अविद्या तत्कार्य रहितः शुद्धः "

अविद्या एवं उसके कार्य से रहित केवल चैतन्यमात्र शुद्ध ब्रह्म को अभेद-आत्मरूपेण ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि

"घटाकाशमठाकाशौ यथाकाश प्रभेदतः।
कल्पितौ परमौ जीवशिवरूपेण कल्पितौ॥" (रु०हृ०उ० ४२)

"माया तत्कार्यविलये नेश्वरत्वं न जीवता" (व०उ०२ ५२)

"यथाकाशो घटाकाशो मठाकाश इतीरितः।
(श्वे०या०उ०१०१३-४)
तथा भ्रान्तैर्द्विधा प्रोक्तो ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना॥"

"चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना॥"
(श्रीरा० प्र० उ० १/७)

"मयि जीवत्वमीशत्वं कल्पितं वस्तुतो न हि" (स०र०उ०३३)

इन श्रुतियों के अनुसार, ये काल्पनिक माया के कार्य हैं, अतः मायाशबलित ईश्वर की उपासना से दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं। अतएव

"अहं ब्रह्मास्मि" (य०सं०) (बृ०उ०१।४।१०)
"तत्त्वमसि" (सा० सं०) (छा०उ० ६।८।७)
"अयमात्मा ब्रह्म" (अ० सं०) (बृ०उ०२।५।१९)

"प्रज्ञानं ब्रह्म" ऋ० सं०) (ऐ०उ० ५।३)

इन अभेद बोधक वेद महावाक्यों के द्वारा ब्रह्मात्मैक्य-अभेद ज्ञान सम्पन्न-

"सर्वतः स्वरूपमेव पश्यञ्जीवन्मुक्तिमवाप्य प्रारब्ध
प्रतिभासनाश पर्यन्तं स्वरूपानुसंधानेन वसेत् ।" (ना०प०उ०७।२)

"द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च
जीवन्मुक्तः सरूपस्याद रूपो देह मुक्तिगः" (मुक्ति०उ०२।३२)

सर्वत्र स्वरूप दर्शी अचित्त जीवन्मुक्त पुरुष को प्रतिबन्धक वासनाओं के समूल शमनार्थं विदेह-कैवल्य सुखास्वादन के लिए प्रारब्ध प्रतिभास नाशपर्यन्त-जीवन पर्यन्त स्वरूपानुसंधान के द्वारा

चिदात्माऽहं परात्माऽहं निर्गुणोऽहं परात्परः ।
आत्म मात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
देह त्रयातिरिक्तोऽहं शुद्ध चैतन्य मस्म्यहम् ।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः सजीवन्मुक्त उच्यते ॥ (ते०बि०उ०३ १-२)

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति विनिश्चयः ।
चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते । (ते०बि०उ०३।२९-३)

यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ।
परमानन्द पूर्णो यः सजीवन्मुक्त उच्यते ॥ (ते०बि०उ०४।३)

यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्नविद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (व०उ०४।२३)

सर्वाधिष्ठान सन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि ।
यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (अन्न उ०२।२७)

चैत्य वर्जित चिन्मात्रे पदे परम पावने ।
अक्षुब्ध चित्तो विश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (व०उ४।२९)

जरामरणमापच्च राज्यं दारिद्र्यमेव च ।
रम्यमित्येव यो भुंक्ते स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
धर्माधर्मौ सुख दुःखं तथा मरण जन्मनी ।
धिया येन सुसंत्यक्त स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया ।
न शोचति न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (म०उ०५५-५७)
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ।
सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (म०उ०४४)
रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
योऽन्तर्व्योमवदच्छन्नः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥
यस्यनाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ (म०उ०४।२४-२५)
"जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।
विशत्यदेह मुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ॥
विदहेमुक्तोनोदेति नास्तमेति नशाम्यति ।
न सन्नासन्न दूरस्थो न चाहं न च मेतरः ।
ततः स्थित गम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किंचिदवशिष्यते ॥
न शून्यं नापि चाकारो नदृश्यं नापि दर्शनम् ।
न च भूत पदार्थौघसदनन्ततया स्थितम् ॥
किमप्यव्यपदेशात्मा पूर्णात्पूर्णतराकृतिः ।
न सन्नासन्न सदसन्नभावोभावनं न च ॥

चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम् ।
अनादि मध्यपर्यन्तं यदनादि निरामयम् ॥
द्रष्टृदर्शनदृश्यानां मध्ये यद्दर्शनंस्मृतम् ।" (म०उ०२।६३-६४)

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमानन्द स्वरूप सार्वभौमभूपा सुख का आस्वादन करते हुए कालक्षेप करना चाहिए, क्योंकि निम्न उपनिषद् मंत्रों के अनुसार स्वात्मा ही निरतिशय प्रेम का आस्पद–विषय है ।

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ।
न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।
न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।
न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति
आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रिय भवति ।
न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति ।
न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रियाः भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति ।
न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति ।
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे
दृष्टे श्रुते मतेविज्ञात इदं सर्वं विदितम् ॥ (बृ० उ०)

उसी द्रष्टव्य, श्रोतव्य, निदिध्यासितव्यसर्वस्वरूपसर्वात्मा के लिए विश्व की सर्ववस्तुएं प्रिय हैं । अतः

प्रेमालम्बनतः स्वस्मा सुखमेव न संशयः ।
आत्मनश्च सुखस्यापि प्रेमालम्बनता सदा ॥ (सू० सं०)

प्रेमास्पद सुखस्वरूप आत्मा ही सर्वातिशय प्रिय है; क्योंकि आत्मा ही समस्त ब्रह्माण्ड का परमार्थिक वास्तविक स्वरूप है । इसीलिए श्रुति

"आत्मनः सुखस्वरूपम्" (श्रुति)
'तत्त्वमसि" (छा० उ० ६।८।७)
"अयमात्मा ब्रह्म" (बृ० उ० २.५.१६)

आदि महावाक्यों के द्वारा, सुखस्वरूप स्वात्मा को ही निरतिशय प्रेम का पात्र बताती हुई उसे ब्रह्मस्वरूप कहती है; क्योंकि निरतिशय प्रेम का पात्र स्वात्मा ही हो सकता है । अतः स्वरूप से भिन्न ब्रह्म नाम की कोई वस्तु नहीं ! आत्मा को ही ब्रह्म कहते हैं; क्योंकि

"प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति" (मु० उ० ३।१।४)
"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (मु० उ० ३।२।१०)

इस श्रुति सिद्धान्तानुसार, उस नित्यानन्द, अक्षयानन्द, भूमानन्द सर्वाधिष्ठान-स्वरूप परमप्रेमास्पदभूत प्रियतम आत्मा से ही समस्त विश्व की प्रियता, प्रतीति एवं व्याप्ति हो रही है । सब उसी में, उसी से, उसी के लिए सब व्यापार कर रहे हैं, उसी से खाते हैं, उसी में खाते हैं, उसी के लिए खाते हैं, उसी से पीते

हैं, उसी के लिए पीते हैं, स्त्री का आलिंगन, उसी से, उसी के लिए होता है। पुत्र, धन आदि का व्यापार भी उसी से, उसी के लिए हो रहा है। सर्व विषयों का वास्तविक मूल विषय वही है। सर्व लोग उस नित्यानन्द का ही सर्वत्र अन्वेषण कर रहे हैं, उससे भिन्न न किसी की कोई गति है, न मति है, न निष्ठा है, न चेष्टा है। इससे सिद्ध हुआ कि सर्वाधिक प्रिय आत्मा ही समस्त प्राणियों का लक्ष्यभूत एकमात्र प्राप्तव्य सुनिश्चित तत्त्व है। अतः सर्वातिशय अविच्छिन्नानन्दाभिलाषी मुमुक्षुओं को चाहिए कि:

"आत्मावलोकनार्थं तु तस्मात्सर्वं परित्यजेत्" (अ०उ०१।४६)

उस परमानन्द, निरतिशयानन्द, पूर्णानन्द सर्वाधारभूत प्रियतम अमृतात्मा के प्रत्यक्षीकरण के लिए,

"न कर्मणा न प्रजया धनेन ......" (कै०उ०१।२)

कर्म, प्रजा, धन—इन क्षुद्र मांसमय, परिच्छिन्न, दुःखस्वरूप तुच्छ साधनों को त्याग करके, श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा,

"निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरात्म विस्मृतेः।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥" (अ०उ०५)

दुःखप्रद निद्रा, लोक वार्ता एवं शब्दादिक विषयों के प्रति लेशमात्र भी अवसर न देते हुए,

"विहाय शास्त्रजालानि ......" (पै०उ०४।१७)

"नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् ......" (बृ०उ०४।४।२१)

"शास्त्रवासनया जन्तोर्लोकवासनयापि च।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥" (मुक्ति०उ०२।२)

वाणीरोधक, यथार्थ ज्ञान के प्रतिबन्धक शास्त्रवासना, लोकवासना एवं देह की

दुर्गन्धित वासना से सर्वथा मुक्त हो,

'यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन्मोक्षमश्नुते' (म०उ०४।८८)

दुःखप्रद स्वाभिमत भौतिक वस्तु का त्याग करते हुए,

"उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्द तत्परः" (स०र०उ०२४)

स्वरूपावरणात्मक नाम-रूप की उपेक्षा के द्वारा,

"शान्तोदान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितोभूत्वा" (वृ०उ०४।४।२३)

शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, समाहित हो,

"भेद दृष्टिरविद्येयं सर्वथा तां विसर्जयेत्" (म०उ०५।११३

बंधनप्रद अविद्यात्मक भेददृष्टि से मुक्त हो, व्यतिरेक दृष्टि से

"दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्"

(ते०बि०उ०१।५०)

दृश्य को अदृश्य--चिन्मयावस्था में लाकर,

"आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया" (श्रुति)

सुषुप्ति से मृत्युपर्यन्त,

'सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।" (ते०बि०उ०१।१८)

"स्वरूपानुसंधानं विनाऽन्यथाचारपरो न भवेत्"

(ना०प०उ०५।१)

सजातीय ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा विजातीय पदार्थाकार वृत्ति का निःशेष निरसन करते हुए अन्वय दृष्टि से,

"यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥

यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत्।

लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत् ॥

जिह्वया यद्रसं ह्यत्ति तत्तदात्मेतिभावयेत् ।
त्वचा यद्यत्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेतिभावयेत् ॥"
(यो०व०उ०६९-७१)

"दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत्" (ते०बि०उ०१।२९)

आँख, कान, नाक, रसना एवं त्वचा से जो कुछ भी ग्रहण करें उन सब को सर्वत्र सर्वदा सर्वकाल में,

"सर्वत्राद्वैत ब्रह्मबुद्धि कुर्यात्" (श्रु_ति)

ज्ञानमयी दृष्टि से, सर्वत्र एक, अद्वैत ब्रह्मबुद्धि से सम्पन्न हो सर्वात्म दृष्टि से,

मायाविद्ये विहायैव उपाधीपरजीवयोः ।
अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्मविलक्ष्यते ॥" (अ०उ०१।३२)

माया एवं अविद्या के भाँड़ को फोड़कर काल्पनिक जीवात्मा-परमात्मा की उपाधि से मुक्त, ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि से सम्पन्न हो,

"स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ।
न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः ॥"
(अ०उ०२।११-१२)

स्वात्मा से समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त-परिपूर्ण देखते हुए,

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥" (ई०उ०७)

"तरतिशोकमात्मवित्" (छा०उ०७।१।३)

अर्थात् सबको स्वात्मरूपेण देखते हुए, सर्वात्मा, सर्वरूप हो एकत्व-आत्म-दर्शन के द्वारा अनादि अविद्या के कार्य शोक-मोह से सदा के लिए मुक्त हो, मोक्ष-साम्राज्य के शाश्वत सार्वभौम सम्राट हो जाँय। कभी भी उन्हें,

"भेद दृष्टिरविद्यैयम्" (म०उ०५।११३)

"द्वितीयाद्वै भयं भवति" (बृ०उ०१।४।२)

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" (बृ०उ०४।४।१९)

"अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव"

(बृ०उ०१।४।१०)

"उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति" (तै०उ०२।७)

भेददर्शनमासाद्य मुक्तिं वाञ्छन्ति ये नराः।

ते महाघोरनरके पतन्त्येव न संशयः॥"

द्वैतविज्ञानमासाद्यमुक्तिं वाञ्छन्ति ये नराः।

ते महाघोरसंसारसर्पदंष्टा न संशयः॥" (सू०सं०)

"नाल्पे सुखमस्ति" (छा०उ०७।२५।१)

"यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम्"

"अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्य लोका भवन्ति"

"यदल्पं तन्मर्त्यम्" (छा०उ०७।२४।१)

"सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद" (बृ०उ०२।४।६)

ज्ञानं नोत्पद्यते पुसां पापोहतचेतसाम् (स्मृति)

पापात्मक, अविद्यामूलक, कैवल्यनिवर्तक, बन्धनकारक, भयप्रद, मृत्युरूप, परतंत्र, पराजित, क्षयबीज, स्वात्मातिरिक्त, जड़, विकृत, दुःखस्वरूप, द्वैतदर्शन को नहीं स्वीकार करना चाहिए, अपितु सर्वदा सर्वदिश, सर्वकाल, सर्ववस्तु, सर्वरूप में सर्वत्र,

"यो वै भूमा तत्सुखम्" (छा०उ०७।२३।१)

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा"

"यो वै भूमा तदमृतम्" (छा०उ०७।२४।१)

"आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा-
पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं
सर्वमिति । स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं
विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः
स स्वराड् भवति ॥" (छा०उ०७।२५ २)

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन', (नि०उ०)

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ०उ०६३)

"तत्त्वमसि" (सा०सं०) (छा०उ०२.८।७)

"अयमात्मा ब्रह्म" (अ०सं०) (बृ०उ०४।५।१६)

"अहं ब्रह्मास्मि" (य०सं०) बृ०उ०१.४ १०)

"अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्" (श्रीमद्भा०१२।५।११)

"अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमद्वयम्" (ना०प०उ०३.२०)

'-ब्रह्मैवाहं न जीवोऽहं ब्रह्मैवाहं परात्परः" (ते०बि०उ०)

'सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैव" (नृ०उ०उ०१)

"तद्ब्रह्माऽयमस्म्यहम्" (कै०उ०१६)

"तद्ब्रह्माहम्" (कै०उ०१७)

"आत्मा ब्रह्मैव भवति सद्रूपत्वाच्चिद्रूपत्वादानन्दरूपत्वाद-
विषयत्वादसङ्गत्वात् परिपूर्णत्वाच्च" (श्रुति)

"सर्वदा ब्रह्माहमिति व्यवहरेत्" (ना०प०उ०६।१)

"अयमात्मा सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो-
मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वयानन्दः परः प्रत्यगेकरसः" (नृ०उ०उ०१)

"आत्मनो ब्रह्मणोर्भेदमसन्तं किं करिष्यति" (श्रोजा० उ०४।६३)

"स जीवः केवलः शिवः" (मैत्रे०उ०२।१)

"जीवएव सदा ब्रह्म" (तै०वि०उ०६।३८)

"ब्रह्म स ब्रह्मवित्स्वयम्" (मुक्ति०उ०२।६४)

"अहमेव परं ब्रह्म" (तै०वि०उ०६।४४)

"अहमेव गुणातीत अहमेव परात्परः" (तै०वि०उ०६।४४)

"अहमेव हरिः साक्षादहमेव सदाशिवः" (तै०वि०उ०६।६४)

"ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" (मु०उ०३।२।९)

"आत्मैवेदं सर्वम्" (छा०उ०७।२५।२)

"ब्रह्मैवेदं सर्वम्" (बृ०उ०२।५।१)

"सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वम्" (नृ०उ०उ०७)

"अहमेवेदं सर्वम्" (छा०उ०७।२५।१)

"अहमेव जगत्सर्वम्" (तै०वि०उ०६।४३)

"न तु तद्द्वितीयमस्ति" (बृ०उ०४।४।२३)

"तते ब्रह्मघने नित्ये संभवन्ति न कल्पिताः" (म०उ०६।१३)

"एकात्मके परे तत्त्वे भेद वार्ता कथं वसेत्" (अ०उ०२५)

निर्विकारेनिराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः" (अ०उ०२२)

"अभेददर्शनं ज्ञानम्" (रु०उ०११)

"ज्ञानं चैकात्म्य दर्शनम्" (श्रीमद्भा०पु० (११।१९।२७)

कैवल्यानन्दप्रद, विजित अविनाशी, सच्चिदानन्दस्वरूप, स्वरूपभूतभूमातत्त्व को देखते, सुनते, समझते हुए, महाद्वैतनिष्ठ ब्रह्मात्मैक्यानुभव—अभेदज्ञान-अमृत, स्वप्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित स्वात्मस्वरूप स्वाराज्य पर आरूढ़ हो,

"जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः" (आ०उ०२०)

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, निर्भय, निर्द्वन्द्व, कृतकृत्य जीवन्मुक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि--

"अद्वैतसिद्धान्तमेव हि सत्यं शिवं सुन्दरं सिद्धान्तमस्ति"

"शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा" (मा०उ०७)

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥" (ई०उ०७)

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥" (ई०उ०६)

"विदेकत्वपरिज्ञाने न शोचति न मुह्यति" (रु०हृ०उ०३४)

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति"
(छा०उ०७।२४।१)

"यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" (बृ०उ०२।४।१४)

"विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" (बृ०उ०२।४।१४)

"येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्" (बृ०उ०२।४।१४)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (नि०उ०)

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" (अ०उ०६३)

"मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः" (श्रुति)

"न तु तद्द्वितीयमस्ति" (बृ०उ० ४।३।२३)

"मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते" (त्रि०म०८०८।१)

"एकात्मकेऽपरे तत्त्वे भेदं कर्ता कथं वसेत्" (अ०उ०२५)

"निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दो विकल्पते" (अ०उ०२३)

"अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः" (अ०उ०२४)

"तते ब्रह्मघने नित्ये संभवन्ति न कल्पिताः" (म०उ०६।१३)

"भेद दृष्टि रविद्येयं सर्वथा तां विसर्जयेत्" (म०उ०५।११३)

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः" (अ०उ०४६)

"ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्मणोऽन्यन्न किंचन" (ते०वि०उ०३।३२)

"आत्मनोऽन्यन्न हि क्वचित्" (अ०उ०५।५६)

"उपादानं प्रपंचस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते।
तस्मात्सर्वं प्रपंचोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत् ॥" यो०शि०उ०४।३)

"सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम् ।
प्रपंचाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्न हि ॥" (आ०प्र०उ०१२)

"एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किंचित् ।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥"
(श्वे०उ०१।१२)

"पुरुष एवेदं सर्वम्" (ऋ०सं०१०।९०।२) (श्वे०उ०३।१५)
(अ०सं०१९।६।४)

"व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्"
(यो०शि०उ०४।४)

"एकः सन् भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः"
(अ०उ०५।७)

"सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव" (मुक्ति

"पटवच्च" (ब्र०सू०२।१।१९)

"न भेदात्" (ब्र०सू०३।२।१२)

"हरिरेव जगज्जगदेव हरिः
हरितो जगतो न हि भिन्नतनुः ।" (वि०पु०)

"अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनः" (वि०पु०)

"सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ।" (वि० पु० २।१६।२३)

"परात्मनो मनुष्येन्द्र विभागोऽज्ञान कल्पितः" (वि०पु०)

"विश्वमेकात्मकं पश्यन्" (श्रीमद्भा०११।२८।१)

"किमद्रमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्"
(श्रीमद्भा०११।२८।४)

"एतावानात्म संमोहो यद् विकल्पस्तु केवले"
(श्रीमद्भा०११।२८।३६)

"अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा" (श्रीमद्भा०२।९।३५)

"अभेददर्शनं ज्ञानम्" (मैत्रे०उ०२।२।२)

"तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः" (अद्भु०२।०)

"द्वितीयाद्वै भयं भवति" बृ०उ०१।४।२)

"मृत्योः स मृत्यु माप्नोति य इह नानेव पश्यति"
(बृ०उ०४।४।१९)

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे
दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम्" (बृ०उ०४।५।७)

"एकस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" (श्रुति)

"तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः ।
उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥" (अन्नु०रा०)

"मुमुक्षुभिर्नैव मतिर्जीवेशवादयोः कार्या ।
किन्तु ब्रह्मतत्त्वं निश्चलेन विचार्यताम् ॥" (म०उ०४।४।७५)

अतः मुमुक्षुओं को जीवेश्वर की द्वैत बुद्धि से विरत हो, अद्वैत को ही सुनिश्चित सार सत्य सिद्धान्त समझकर अविद्योन्मूलक, शोकमोहविनाशक, अक्षर, शुद्ध, सर्वगत, निरतिशय प्रेमास्पद प्रियतम आत्मा के साक्षात्कार के लिए,

देहोऽहमिति संकल्पो हृदय ग्रन्थिरीरितः ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानमुच्यते ॥
देहोऽहमिति या बुद्धिः सा चाविद्येति भण्यते ।
देहोऽहमिति यज्ज्ञानं तदेव द्वैतमुच्यते ॥ (ते०बि उ०५।६२-६४)

"स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान् ।
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते ॥" (मुक्ति०उ०२।६६)

"ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं मृषामात्रा उपाधयः ।" (ब०उ०१८)

"संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते" (म०उ०६।२६)

"संसारदोष दृष्ट्यैव विरक्तिर्जायते सदा ।" (ना०प०उ०६.२०)

"विरक्तस्य तु संसाराज्ज्ञानं कैवल्य साधनम् ॥"
(यो०वा०उ०६।४७)

सर्वानर्थस्वरूप बन्धनप्रद हड्डी, मांस, मल, मूत्रयुक्त दुर्गन्धित घृणित शरीर की अहंमन्यता से मुक्त हो, ब्रह्मादि लोकपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड को मिथ्या दुःखप्रद समझकर आत्मातिरिक्त सम्पूर्ण असत् संसार से विरक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि

"वैराग्यहीनस्य न सत्यवेदनं
न मुक्तिसिद्धिर्न च बन्धनच्छिदा ॥" (सू०सं०)

संसारासक्ति से विरक्त पुरुष का ही ज्ञान कैवल्यप्रद होता है । वैराग्यहीन पुरुष को सत्य ब्रह्म की अनुभूति नहीं होती, न उसकी मुक्ति ही होती है और न उसके बन्धन का ही विच्छेद होता है । इस प्रकार वैराग्य सम्पन्न हो वेदान्ताभ्यास में निरत,

"शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितोभूत्वाऽऽत्मन्ये-
-वात्मानं पश्यति सर्वमात्मानं पश्यति" (बृ०उ०४।५।२३)

शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु, समाहित हो,

"सर्वं ब्रह्मेति यस्यान्तर्भावना सा हि मुक्तिदा" (म०उ०५।११३)

"नाहं ब्रह्मेति जानाति कदा मुक्तो भविष्यति" (म०उ०)

"अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं देहदोषं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं मृत्युपाशं विनाशयेत् ॥ (ते०बि०उ०)
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं द्वैतदुःखं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत् ॥ (ते०बि०उ०)
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं चित्तबन्धं विनाशयेत् ।
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं सर्वशोकं विनाशयेत् ॥ (ते०बि०उ०)
अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति । (ते०बि०उ०)
सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत् ।
सद्योमोक्षमवाप्नोति नात्र संदेहमण्वपि ॥" (ते०बि०उ०)

"दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे ।
रतिर्नवोदिता याऽसौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते ॥"

(यो०वा०३.२२।३६)

"तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥" (यो०वा०३.२२.२४)

'सर्वं ब्रह्म' या 'अहं ब्रह्म' या 'दृश्याभाव' या 'ब्रह्मबोधन' की मुक्तिप्रदभावना यानी ब्रह्माभ्यासरूप ब्रह्मास्त्र से युक्त हो,

"मन एव महद्बन्धम्" (ते०बि०उ०५।१०१)
"मन एव हि बोधकः" (ते०बि०उ०५।१००)
"मन एव जगत्सर्वं मन एव महारिपुः" (ते०बि०उ०५।९८)

महान् बन्धनप्रद, द्वैतदर्शन के पोषक, जगदासक्त मनरूप महान् शत्रु को मारकर यानी मनोनाश के द्वारा,

"स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दावुपेक्षितुः ।
निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् ॥" (स०र०उ०२८)

"निर्विकारतयावृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ॥" (ते०बि०उ०१।३७)

प्रभाशून्यं मनः शून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् ।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः ॥
ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ।
साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः पारमार्थिकः ॥"
(मुक्ति०उ०२।५५-५६)

"समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः" (यो०त०उ०१०७)

"जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटिरहिता परमानन्दस्वरूपा–
शुद्धचैतन्यात्मिका समाधिः" (शा०उ०१।७२)

जीवात्मा परमात्मा की साम्य— [illegible] हो,

"यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥" (श्रीजा०उ०१०।१०)

"सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
यदा पश्यति भूतात्मा ब्रह्मसंपद्यते तदा ॥" (ब्र०पु०२३५।२२)

समस्त प्राणियों को अपनी आत्मा में और आत्मा को समस्त प्राणियों में देखते हुए सर्वात्मदर्शन के द्वारा सर्वास्पद स्वात्मा से रति, प्रीति, क्रीडा को प्राप्तकर, उसके सुखस्वरूपत्व एवं प्रियत्व से सम्पन्न हो, उसके सद्घनत्व, चिद्घनत्व एवं आनन्दघनत्व की अनुभूति से,

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन्नात्मयाजी वै स्वाराज्यमधिगच्छति ॥" (मनु०)

समत्वदर्शनरूप आत्मयाग से प्राप्तव्य महालाभस्वरूप स्वाराज्यरूप महासिद्धि को प्राप्त कर,

"यस्तु मूढोऽस्य बुद्धिर्वासिद्धि जालानि वाञ्छति ।
निरिच्छोः परिपूर्णस्य नेच्छा संभवति क्वचित् ।"
(अ०उ०४।५७)

निरिच्छ; परिपूर्ण आत्मकाम पूर्णकाम हो, मूढों से परमार्थरूप से प्रप्त अविद्यामूलक मिथ्या बंधनप्रद सिद्धिजाल से सर्वथा मुक्त हो सत्य, शिव, सुंदर-स्वरूप अद्वैत दुर्दर्श अजातवाद के सुनिश्चित सर्वोत्तम सर्वसार सिद्धान्त को ईश्वरानुग्रह से अनुभवकर भयोत्पादक अविद्यात्मक असत्, जड़, दुःखस्वरूप द्वैतदर्शनरूप पाश से मुक्त,

"सत्यं शिवं सुन्दरम्"

का स्वरूप बनकर अपने परमार्थस्वरूप निज आत्म महिमा में सम्पन्न

भूमारूप स्वमहिमा से महिमान्वित अनन्तात्मा सर्वात्मासर्वरूप हो,

"किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विलक्षणम्।" (अ०उ० ६)

क्व भूतं भविष्यद्वा वर्तमानमपि क्व वा :
क्व देशः क्व च वा नित्यं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व चात्मा क्व च वानात्मा क्व शुभं क्वाशुभं तथा ।
क्व चिन्ता क्व च वाऽचिन्ता स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व स्वप्न क्व सुषुप्तिर्वा क्व च जागरणं तथा ।
क्व तुरीयंभयं वापि स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व दूर क्व समीपं वा बाह्यं क्वाभ्यन्तरं क्व वा ।
क्व स्थूलं क्व च वा सूक्ष्मं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व धर्मः क्व च वा कामः क्व चार्थः क्व विवेकता ।
क्व द्वैतं क्व च वाऽद्वैतं स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व मृत्युर्जीवितं वा क्व लोकाःक्वास्य क्व लौकिकम् ।
क्व लयः क्व समाधिर्वा स्वमहिम्नि स्थितस्य मे ॥
क्व प्रारब्धानि कर्माणि जीवन्मुक्तिरपि क्व वा ।
क्व तद्विदेहकैवल्यं निर्विशेषस्य सर्वदा ॥
अतं त्रिवर्गकथया योगस्य कथयाऽप्यलम् ।
अलं विज्ञानकथया विश्रान्तस्य ममात्मनि ॥

हेयोपादेयबुद्धि से रहित, द्वैत-अद्वैत, देह-विदेह, राग-विराग, सुख-दुख, जन्म-मरण, शत्रु-मित्र, स्वर्ग-नरक, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म, जीव-शिव, बंध-मोक्ष, प्रकृति-पुरुष आदि सर्वद्वन्द्वों से मुक्त, निर्द्वन्द्व, निर्विकार, सम, शान्त, शिवस्वरूप, असंग, व्यापकात्मा हो,

तृप्तोऽहं तृप्तोऽहं पूर्णोऽहं पूर्णोऽहं
सर्वोऽहं सर्वोऽहं शान्तोऽहं शान्तोऽहं
शुद्धोऽहं शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं बुद्धोऽहं
मुक्तोऽहं मुक्तोऽहं अजरोऽहं अजरोऽहं
अमरोऽहं अमरोऽहं अनन्तोऽहं अनन्तोऽहं
अखण्डोऽहं अखण्डोऽहं सच्चिदानन्दोऽहं सच्चिदानंदोऽहं
परमानन्दोऽहं परमानन्दोऽहं परात्परोऽहं परात्परोऽहं

के स्वानुभव सम्पन्न दिव्य उद्गार से ब्रह्माण्ड को भरते हुए यानी वेदान्तघोष करते हुए सर्ववाच्यातीत वेदान्तवेद्य सर्वाश्रय सर्ववन्द्य हो,

"अमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् ।
एवं स्वात्मानं ज्ञात्वा वेदैः प्रयोजनं किं भवति ॥" (पै०उ०४।६)
"ज्ञानामृतेनतृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
न चास्ति किंचित् कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥
लोकत्रयेऽपिकर्त्तव्यं किंचिदस्य न विद्यते ॥" (जीवा०१।२३-२४)
लोक द्वयेऽपि कर्त्तव्यं किंचिदस्य न विद्यते ।
इहैव स विमुक्तः स्यात् सम्पूर्णः समदर्शनः ॥ (शि०५०)
"न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते" (छा०उ०८।१५।१)
"भूयस्ते न निवर्तन्ते परावरविदो जनाः" (कु०उ०२२)
"न सभूयोऽभिजायते न सभूयोऽभिजायते" (ब०ना०उ०३६)
"ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं व्रजेत्" (त्रि०ब्रा०उ०१६१)
"यत्र गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः" (ना०प०उ०६।२०)
"मृतोभवति संसृतेः" (यो०शि०उ०६।१)

"न चास्ति पुनरावृत्तिरस्मिन्संसारमण्डले" (यो०शि०उ०५।६१)

"न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि" (अन्नु० रा०)

"स मुक्तः परमेश्वरः" (म०उ०६।८)

पुनरावर्तन से मुक्त परमेश्वर स्वरूप हो जाना चाहिए। परन्तु ध्यान रहे कि यह,

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥" (श्रीमद्भ०७।१९)

अनेक जन्मों के कर्म, सांख्य योग एवं उपासना आदि से समाराधित, ईश्वरानुग्रह से प्राप्तव्य, महापुरुषों को सुदुर्लभ महाब्राह्मी अवस्था सहसा किसी को प्राप्त होनी संभव नहीं है। अतः कल्याणकामियों को परमादरणीया सर्वमान्य परम प्रमाणभूता भगवती श्रुति के आदेशानुसार, भगवान् की भक्ति के द्वारा ही इस शोकशामक ब्रह्मात्मैक्य महा अद्वैत ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

"भक्त्या विना ब्रह्मज्ञानं कदापि न जायते" (त्रि०म०उ०८।१)

"बुद्धिमतामनायासेनाचिरादेव तत्त्वज्ञानं भवति"
(त्रि०म०उ०८।१)

"मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते" (श्रीमद्भा०१०।८२।४५)

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥"
(श्रीमद्भ०१०।९-१०)

"ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना"

इस प्रकार ईश्वर के अनुग्रह—भक्ति से ही शुद्ध सत्त्वपुरुष को अद्वैत ज्ञान का अधिकार प्राप्त होता है, अन्य को नहीं। अतः बुद्धिमानों को चाहिए कि वे भगवद्भक्ति से युक्त हो अर्थात् ईश्वर की कृपा के पात्र बनकर ही इस अत्यन्त गुह्यतम दुर्दर्श अद्वैत महाज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करें; क्योंकि

"भक्तिरेव परमार्थदायिनी
भक्तिरेव भवरोगनाशिनी।
भक्तिरेव परवेदनप्रदा
भक्तिरेव परमुक्तिकारिणी ॥" (सू०सं०)

भक्ति ही परमार्थदायिनी एवं भवरोग नाशिनी है, भक्ति से ही परमात्मतत्त्व का अनुभव होता है और भक्ति से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है, अन्य साधन से नहीं। अतः

"ऋते कृष्णप्रसादं तु स्वात्मबोधो न कस्यचित्"
(श्रीमद्भा०मा०३।८)

आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण चन्द्र के प्रसाद से प्रसादित शुद्ध सत्त्व सम्पन्न हो, स्वात्मबोधोपलब्धि का प्रयास करना चाहिए। ॥शम॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



स्वतंत्र हृदयस्येदं अद्वैतामृतवर्षिणम् ।
ज्ञानामृतस्य सारं च मुमुक्षुणां धनं तथा ॥
अज्ञान तमसः हर्ता द्वैतदृष्टेश्च बाधकः ।
अद्वैतस्य तथा चास्तिनित्योदित दिवाकरः ॥
स्थापकोऽयं च जीवस्य ब्रह्मतत्त्वस्य पदे सदा ।
अभेद दर्शनं चास्ति, ममानेशस्य दर्शिनः ॥
साम्यामृतस्य सिन्धुश्चभूमानन्दस्य भावकः ।
ब्रह्मानन्द प्रदश्चैव, वेदान्तैश्च समन्वितः ॥
मम सर्वात्मनश्चास्ति इदं सर्वात्मदर्शनम् ।
स्वात्मानन्दस्य प्राप्त्यर्थम्, सर्वेषां च हिताय वै ॥
समता मुदिता मैत्री शान्तीनां स्रोत एव च ।
मुक्तानन्द प्रदश्चैव अद्भुतोऽस्ति सुधार्णवः ॥
अतः मुमुक्षवः नित्यम् मोक्षानन्दस्य प्राप्तये ।
कैवल्यानन्ददम् शास्त्रम् सेवयेयुः सुधाइव ॥
सकलसुखनिधानं सर्व विद्यावभासं
अमतिमिरविहीनं शान्तमूर्ति विशुद्धम् ।
हृदिगतमभिरामं सर्ववेदान्त भूमिं
यदुपतिमभिवन्दे कृष्ण मोक्षानमन्तः ॥
नमो विज्ञप्ति रूपाय नमो वेदान्त वर्तिणे ।
वेद वेदान्त निष्ठानामात्मभूताय ते नमः ॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

शुद्धि पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०	पंक्ति
ज्ञानमूर्ति	ज्ञानमूर्ति	१	२
मृत्युमाप्नेति	मृत्युमाप्नोति	२	१०
प्रेयः·········सर्वस्मत	सर्वस्मात	६	१५
संयक्तं	संत्यक्तं	७	२
सव	सर्व	६	४
साधर्म्य	साधर्म्य	६	१६
कैवल्य प्रद	कैवल्यप्रद	१०	१
पूर्ण काम	पूर्णकाम	१०	१
उबोव	जीव	१०	४
ज्ञान यज्ञोडुयेनैव	हुपनैव	१०	८
लोष्टासम	लोष्टाश्म	१०	१२
मे तरे	नेतरे	११	१७
स्वसंवेद्यानुभूत	नुभूति	१३	५
हा	हो	१३	५
इसा	इसी	१३	११
मिद	मिदं	१३	१४
पविन्नाणी तराणि	पवित्राणीतराणि	१४	१०
नियामित	नियमित	१५	१०
येना ब्रु तं	येनाब्रुतं	१७	८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०	पंक्ति
य।गः	योगः	१८	१७
ऋर्मसु	कर्मसु	१८	१७
वर्तन्ते	वर्तते	१९	१७
।विरतो	विरक्तो	२१	८
गतेरपि	गतेरपि	२१	१२
विज्ञाय	विज्ञाय	२१	१७
साक्षद्वस्तुतो	साक्षाद्वस्तुतो	२२	१
।नरासतः	निरासतः	२२	११
पूर्ण मद्वयमाक्रियम्	पूर्णमद्वयमक्रियम्	२२	१२
वि व	रिव	२२	१४
चैव मा सुप्ते	चैवमासुप्ते	२२	१७
व्य भुञ्जानो	व्यभुञ्जानो	२३	६
शरीर्यप्य शरीरेव	शरीर्यप्यशरीरैव	२३	११
स्यत	स्थित	२३	१२
विश्व तश्चक्षुः	विश्वतश्चक्षुः	२४	९
ब्रह्मै व	ब्रह्मैव	२४	१४
लोक	लोक	२४	१७
ब्रह्मवेदां	ब्रह्मविदां	२५	४
निर्वाणु	निर्वाणा	२५	११
यथर्थतः	यथार्थतः	२६	४
सद्वित्वतिः	सद्विचतिः	२६	८

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०	पंक्ति
वेवला	केवला	२६	८
एकत्वमनु पश्यतः	एकत्वमनुपश्यतः	२८	११
परमर्थिक	परमार्थिक	२९	७
महृश्वर्य	महाश्वर्य	२९	१३
भूतेप्	भूतेपू	३२	९
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि	प्रविष्टान्यप्रविष्टानि	३२	१०
एतादेशं	एतावदेव	३२	११
प्रतिविम्बवि	प्रविविम्बन्ति	३२	१५
—	वगन्ति	१५	१५
इ ति	इति	३५	५
क्रियाग	क्रियावा	३६	१५
स्वभाविक	स्वाभाविक	३७	११
प्रदंस	प्रदीप्त	३७	११
दृष्टं	दृष्टि	३७	१७
मुच	मुक्तिः	३७	१७
क्रोवादि	क्रोधादि	३९	७
व्रह्मौं वाहं	ब्रह्मै वाहं	४०	९,१०
वह्मौ वाहं	ब्रह्मै वाहं	४०	११
प'रिपूर्णा	परिपूर्णा	४१	१५
सक्ष्यहं	साक्ष्यहं	४२	२
क्रिचिदेप्यत्र	किंचिदप्यत्र	४२	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०	पंक्ति
ब	न	४२	२
सांक्षा	साक्षी	४२	६
अत्मा	आत्मा	४२	६
--	न	४२	६
व्यतिरेक्राधिष्ठन	व्यतिरेकाधिष्ठान	४२	७
दृष्टं	दृष्टि	४२	७
अपान्ने	अपने	४२	१६
पुर्णब्रह्म	पूर्णब्रह्म	४३	५
सर्वामिति	सर्वमिति	४३	८
नम्स्कार	नमस्कार	४५	१७
--	हूँ तथा मैं ही समता शान्ति	४६	१३
मूकावचव	मूकवचव	४७	१२
यतियां हच्छिको	यतियांदृच्छिको	४७	१४
वा सन्तः	वासन्तः	४७	१५
सं प्रवृत्तानि	संप्रवृत्तानि	४९	२
हेवा	होवा	४९	१५
वतृंत्व	कतृंत्व	५०	१
मुत्त	मुक्त	५०	१
बुंद्ध	बुद्धि	५०	२
ह त्वापि	हत्वापि	५०	४
पप	पाप	५०	६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०	पंक्ति
--	नाम	५१	१७
सबने	सबके	५३	३
जीवन	जीवस	५३	६
सचदानन्द	सच्चिदानन्द	५३	११
अदि	आदि	५३	१६
भूनानन्दात्मा	भूमानन्दात्मा	५३	२२
बुद्ध	बुद्धि	५४	५
अनुब्रजाम्हं	अनुब्रजाम्यहं	५५	७
अविद्यमाना	अविद्यमाना	५७	१६
ब्रह्मपि	ब्रह्म	५८	१३
आप्राप्ति	अप्राप्ति	५८	१५
द्वेपत्मक	द्वेपात्मक	५८	२०
दुख्खमाखिलं	दु खमखिलं	६१	२१
दृश्याभावे	दृश्याभावे	६२	१७
भवोम्मथ्या	भवेम्मिथ्या	६५	१३
क्रियते	क्रियते	६६	१७
हैतुभूत	हेतुभूत	६७	१४
सत्य	सत्य	६७	१८
म या	माया	६८	१
ब्रह्म	ब्रह्मा	६८	१८
दढ्या	दार्ढ्या	६९	६
युक्त	मुक्त	६९	१४

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सं०
स्वरूरभूत	स्वरूपभूत	७०
महदेव	महादेव	७०
सूर्यर्वित विम्बवत्	सूर्यप्रतिविम्बवत्	७०
ततएव	अतएव	७१
अवेद्या	अविद्या	७१
द्वितेयस्य	द्वितीयस्य	७१
कलना	कल्पना	७१
स्याद रूपा	स्यादरूपो	७२
स्ववस्ता	स्ववस्था	७३
देदाः	वेदाः	७४
स्वरमा	स्वात्मा	७५
सुत्रमेत्र	सुत्रमेव	७५
सर्वातिशय	सर्वातिशय	७५
अपरिच्छन्ना	अपरिच्छिन्ना	७६
वेस्मृतेः	विस्मृते	७६
क्वचन्ना	क्वचिन्ना	७६
दृच्छ	दृड्डच्छ	७६
अवचावृत्ति	अतदचावृत्ति	८७
ग्रह्य	ग्राह्य	८८

नोटः—लुप्ताक्षर (ऽ) का अभाव होने के कारण पुस्तक में कहीं २ ... के बदले Z व S चिन्हों का प्रयोग हुआ है। पाठक Z व S ... लुप्ताक्षर (ऽ) ही समझें।

सर्वात्मदर्शी श्रोत्रिय ब्रह्मविद्वरिष्ठ परमहंस अनन्त श्री वि
श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज द्वारा प्रणीत
अमूल्य ग्रन्थ ।

१— श्री मद्भगवद्गीता की सर्वोत्कृष्ट प्रवचनात्मिका टीका

तत्त्वदर्शिनी मू०—१०

२— नारदभक्तिसूत्र की सर्वोत्कृष्ट अनुभवात्मिका टीका

प्रेमदर्शिनी मू०—५ रु

३— पाण्डित्यपूर्ण अद्भुद अनुभवसम्पन्न अद्वितीय स्वतन्त्र ग्रन्थ

कर्मयोग मू०—१।

४— सर्व वेदान्त समन्वित अद्वैतानुभवपूर्णग्रन्थ

ज्ञान-योग मू०—२

पुस्तक मिलने का पता:— -

गिरिधर पाण्डेय

(१) ग्राम, पो०—पहसा, जिला—बलिया (उ० प्र०)
(२) जनता साइकिल इम्पोरियम, १२ कुर्मी टोला मेन रोड, आज
(उ० प्र